Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/2017-19
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th November 2019
Date of posting 15th & 20th November 2019
Total Page 52

नवम्बर 2019 वर्ष 31 अंक 11 मूल्य ₹ 40

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

परमाणु हमला बचेगा कौन?

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
नवम्बर 2019
वर्ष 31
अंक 11

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका
राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित

सलाहकार मण्डल
शरदचंद्र बेहार, डॉ. वि.दि. गर्दे, देवेन्द्र मेवाड़ी, डॉ. मनोज कुमार पटैरिया,
डॉ. संध्या चतुर्वेदी, प्रो. विजयकांत वर्मा, डॉ. रविप्रकाश दुबे,
डॉ. अशोक कुमार ग्वाल, डॉ. आर.एन.यादव, डॉ. सुनील कुमार श्रीवास्तव,
प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, प्रो. अमिताभ सक्सेना

संपादक
संतोष चौबे

कार्यकारी संपादक
विनीता चौबे

उप-संपादक
पुष्पा असिवाल

सह-संपादक
मोहन सगोरिया, रवीन्द्र जैन, मनीष श्रीवास्तव

संस्थागत सहयोग
गौरव शुक्ला, डॉ. डी.एस.राघव, डॉ. विजय सिंह, डॉ. सीतेश सिन्हा,
रवि चतुर्वेदी, डॉ. मुनीष गोविंद, डॉ. अनुराग सीठा, डॉ. सत्येन्द्र खरे, संतोष शुक्ला

राज्य प्रसार समन्वयक
शशिकांत वर्मा, लातूर सिंह वर्मा, लियाक़त अली खोखर, राजेश शुक्ला,
शलभ नेपालिया, अंबरीष कुमार, मुदस्सर कर, निशांत श्रीवास्तव,
रजत चतुर्वेदी, बिनीस कुमार, आबिद हुसैन भट्ट, दलजीत सिंह,
अजीत चतुर्वेदी, अमिताभ गांगुली, नरेन्द्र कुमार, इंद्रनील मुखर्जी, अनूप श्रीवास्तव,
शैलेष बंसल, सुशांत चक्रवर्ती

क्षेत्रीय प्रसार समन्वयक
राजीव चौबे, जितेन्द्र पांडे, लुकमान मसूद, आर.के. भारद्वाज, प्रवीण तिवारी,
अरुण साहू, अभिषेक अवस्थी, विजय श्रीवास्तव, सूर्य प्रकाश तिवारी अमृतेष कुमार,
योगेश मिश्रा, मनीष खरे, सचिन जैन, रूपेश देवांगन, राहुल चतुर्वेदी, संतोष उपाध्याय,
असीम सरकार, भुवनेश्वर प्रसाद द्विवेदी, राजेश कुमार गुप्ता,
दीपक पाटीदार, भारत चतुर्वेदी, रक्षि मसूद, वेद प्रकाश परोहा, अमृतराज निगम
अशोक कुमार बारी

समन्वयक प्रचार एवं विज्ञापन
राजेश पंडा

आवरण एवं डिजाइन
वंदना श्रीवास्तव, अमित सोनी

आज के विकसित अथवा तेज विकास दर वाले विकासशील देशों में जो परिवर्तन हुए हैं, वे जीवन और प्रकृति की वैज्ञानिक तथा तार्किक दृष्टि को स्वीकार करने के कारण ही हुए हैं।

– प्रशांतचंद्र महालनोबीस

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 304

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

क्रम

स्मरण

ओज़ोन परत की खोज और इसे बचाने के प्रयास

• डॉ.कपूरमल जैन /05

विज्ञान आलेख

पादप रसायनों का खानपान में महत्व

• डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र /09

नींद का विज्ञान : जारी है अनुसंधान

• सुभाष चंद्र लखेड़ा /12

परमाणु हमला - बचेगा कौन?

• विज़न कुमार पांडेय /16

ऊर्जा समस्या : वैकल्पिक स्रोत जरूरी

• डॉ. दिनेश मणि /19

खुलेंगे जिंदगी के राज

• प्रमोद भार्गव /22

विज्ञान : युवा लेखन

प्रिंटिंग प्रेस : तकनीक, इतिहास और अवदान

• कुणाल सिंह /24

हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल : अनुकूल ऊर्जा का क्रांतिकारी स्रोत

• प्रांजल धर /27

विज्ञान हस्तक्षेप

प्राकृतिक आपदाओं से जुड़े मानव स्वास्थ्य मुद्दे

• डॉ. शुभ्रता मिश्रा /30

जैव कारखाने : सतत विकास के महत्वपूर्ण अंग

• प्रज्ञा गौतम /34

विज्ञान कथा

अतीत

• राम अवतार शर्मा /38

कॅरियर

सिस्मिक इंजीनियरिंग

• संजय गोस्वामी /41

विज्ञान इस माह

धूमकेतु और क्षुद्रग्रह से निर्मित अनोखी खगोलीय आतिशबाज़ी

• इरफॉन ह्यूमन /45

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-2700466 (डेस्क), 2700400 (रिसेप्शन)

e-mail : electroniki@electroniki.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- प्रति अंक : 40/-

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

ओज़ोन परत
की खोज और इसे बचाने के प्रयास

डॉ. कपूरमल जैन

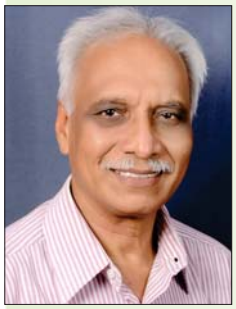

डॉ. कपूरमल जैन वरिष्ठ विज्ञान लेखक हैं। भौतिकी शास्त्र से संबंधित लेख लिखने में वे सिद्धहस्त हैं। घर-घर में विज्ञान जैसी लोकप्रिय शृंखला भी उन्होंने लिखी है। आण्विक भौतिकी के क्षेत्र में उन्होंने शोधकार्य किया है। अब तक 225 से अधिक लेख तथा 15 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं हैं। डॉ. कपूरमल जैन की लोक व्यापीकरण एवं विज्ञान की शिक्षण पद्धति में नवाचार लाने में गहरी रुचि थी। वे रबीन्द्रनाथ टेगोर विश्वविद्यालय के विज्ञान संचार केन्द्र से जुड़े रहे। उनके असामयिक निधन से विज्ञान लेखन जगत में अपूर्णीय क्षति हुई है। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' परिवार विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

सौर परिवार के सभी ग्रहों में से हमारी पृथ्वी ही एक मात्र जीवित ग्रह है। इसके चारों ओर प्रकृति द्वारा निर्मित एक ऐसा 'सुरक्षा-तंत्र' है जो इसे अंतरिक्ष से आने वाली 'कॉस्मिक किरणों' के साथ ही विध्वंसक सौर-गतिविधियों, यथा 'सोलर विण्ड', 'चुम्बकीय तूफान और 'कोरोनल मास इजेक्शन' आदि प्रभावों से बचाये रखता है। इसी कारण पृथ्वी पर जीवन को उत्पन्न करने और उसे बचाये रखने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। इस 'सुरक्षा-तंत्र' का सबसे बाहरी हिस्सा 'मेग्नेटोस्फिअर' है तथा इसके ठीक नीचे वाले हिस्सा 'आयनोस्फिअर' कहलाता है। इसके बाद 'एट्मास्फिअर' यानि, 'वायुमंडल' आता है। वैज्ञानिकों ने इन्हें अपने गुणों के आधार पर विभिन्न भागों में बॉटा है। 'एट्मास्फिअर' के दो भाग हैं। धरती सतह से लगभग 10-15 किलोमीटर तक स्थित भाग को 'ट्रोपोस्फिअर' तथा इसके ठीक ऊपर वाला हिस्सा, जो लगभग 15 से 50 किलोमीटर तक फैला होता है, को 'स्ट्रेट्रोस्फिअर' कहते है। इस 'स्ट्रेटोस्फिअर' के निचले भाग (20 से 30 किलोमीटर) में ओज़ोन बहुतायात में पाई जाती है। इस कारण इसे 'ओज़ोन परत' कहते हैं। वैसे अन्य गैसों की तुलना में यहाँ यह बहुत कम होती है लेकिन, पृथ्वी के वायुमंडल में पाये जाने वाले ओज़ोन के औसत घनत्व (0.3 पीपीएम यानि, दस लाख हवा के अणुओं में 0.3 ओजोन के अणु) की तुलना में यहाँ इसका घनत्व 10 पीपीएम होता है। ओज़ोन की यह मात्रा इतनी पर्याप्त होती है कि इससे वे ऊर्जावान 'यूव्ही' (Ultraviolet rays) यानि पराबैंगनी किरणें रूक जाती हैं, जो धरती-सतह पर जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने में बाधा उत्पन्न करती हैं। इनके रूकने से पृथ्वी के वातावरण में सिर्फ वे विकिरण ही प्रवेश कर पाते हैं, जो पृथ्वी को जीवित ग्रह बनाये रखने के लिये जरूरी होते हैं। लेकिन, ओज़ोन परत में छिद्र (यानि, उस स्थान पर ओज़ोन परत का अत्यंत विरल हो जाना) हो जाने की स्थिति में धरती पर पराबैंगनी विकिरणों की उपस्थिति में वृद्धि होती है, जोजीवन को सुरक्षित रखने वाली परिस्थितियों को प्रभावित करने लगती हैं। इसकी धरती सतह पर उपस्थिति त्वचा-केंसर का कारण बनती है। यह आँखों के लेंस, कोर्निया, रेटिना तथा कन्जंक्टिवा जैसे हिस्सों को नुकसान पहुँचाती हैं। इससे गेहूँ, चावल, बार्ले, ओट्स, मक्का, सोयाबीन, मटर आदि जैसे प्रमुख फसलों को भी नुकसान पहुँचने लगता है। इसके लगातार सम्पर्क में आने से लकड़ी, प्लास्टिक, रबर तथा कई प्रकार के बिल्डिंग मटेरियल आदि भी खराब होने लगते हैं। कुछ दशक पहले ओज़ोन परत में एक क्षेत्र में बड़ा छिद्र देखा गया है, जो वैश्विक चिंता का बड़ा कारण बन कर सामने आया। आईये, पहले हम ओज़ोन परत की खोज के इतिहास पर नज़र डालते हैं।

ओज़ोन परत की खोज

ओज़ोन परत की खोज 1913 में फ्रांस के भौतिकविदों चार्ल्स फेब्री तथा हेनरी ब्यूसॅन ने की। इसके बाद एक अन्य मौसम विज्ञानी जी.एम.बी.डाब्सॅन ने स्पेक्ट्रोफोटोमीटर की सहायता से धरती-सतह

से ही इसके गुणों का अध्ययन किया। अपने ग्लोब के चारों ओर बिछी इस परत की मोटाई सब जगह एक-समान नहीं होती। यह ध्रुवीय क्षेत्रों में सर्वाधिक मोटी और भूमध्यीय क्षेत्रों में पतली होती है। यह भी देखा गया है कि इसकी प्रकृति और संरचना सामान्यतः सीज़न और भौगोलिक स्थिति के साथ ही प्राकृतिक गतिविधियों पर निर्भर करती है।

ओज़ोन परत सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को धरती सतह तक आने से रोकती है। इन किरणों को इनकी ऊर्जा और जैविक प्रभाव के आधार पर तीन भागों में बाँटा जाता है। 400 से 315 नैनोमीटर वाले क्षेत्र को 'यूव्ही (ए)', 315 से 280 नैनोमीटर वाले क्षेत्र को 'यूव्ही (बी)' तथा 280 से 100 नैनोमीटर वाले क्षेत्र को 'यूव्ही (सी')' के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक प्रकार के जीवन के लिये 'यूव्ही (सी)' अत्यधिक नुकसानदायक होती है। यह सबसे पहले ही करीब 35 किलोमीटर की ऊँचाई पर ही रूक जाती है। इसके बाद 'यूव्ही (बी)' कुछ आगे बढ़ती है, लेकिन यह भी धीरे-धीरे रूक जाती है। इसके रूकने से धरती उन किरणों से सुरक्षित हो गई जो चर्म रोग, मोतियाबिंद आदि की अभिवृद्धि के लिये कारण बनती है। अब जो शेष किरणें धरती तक पहुँचती हैं वे यूव्ही (ए) हैं। वैसे तो कुछ हद तक ये किरणें भी हानिकारक हैं लेकिन, इन किरणों की उपस्थिति में हमारी त्वचा 'विटामिन-डी' बनाती है। इस विटामिन के अभाव में हड्डियाँ कमजोर रह जाती। इस दृष्टि से इन किरणों का धरती सतह तक पहुँचना सौभाग्य है।

प्रत्येक अणु अथवा परमाणु की अपनी आंतरिक 'इलेक्ट्रॉनिक संरचनाएं' होती हैं। 'बाह्य-ऊर्जा' के अवशोषित होने अथवा उत्तेजित अणु और परमाणुओं के द्वारा उत्सर्जन होने पर 'विद्युत-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम' प्राप्त होते हैं जो उनके 'विशिष्ट हस्ताक्षर' होते हैं। ओज़ोन का भी अपना 'हस्ताक्षर' होता है, जो उसका 'परिचय-पत्र' होता है। इस हस्ताक्षर को स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से पहिचाना जा सकता है।

ओज़ोन परत का अध्ययन

वैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययन से पता चलता है कि पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में ओज़ोन परत में ओज़ोन बनने और बिगड़ने की प्रक्रियाएं सतत चलती रहती हैं लेकिन उसका

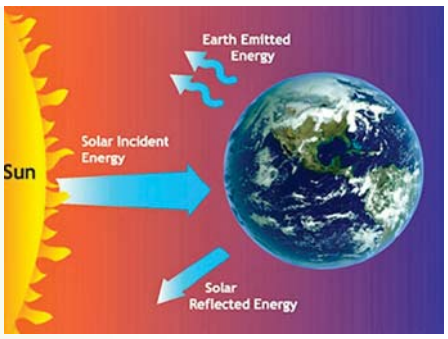

औसत घनत्व सदैव बना रहता है। इन प्रक्रियाओं का अध्ययन सर्वप्रथम सिडनी चाओमेन ने 1930 में किया और बताया कि पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में ऑक्सीजन अणु का प्रकाश-अपघटन होता है जिससे वह दो परमाणुओं में टूट जाता है। जब ये परमाणु (ए) ऑक्सीजन के अणु (O_2) से संयोग करते हैं तब ओज़ोन का अणु (O_3) तैयार होता है। यह ओज़ोन का अणु भी अल्पजीवी होता है जो पराबैंगनी प्रकाश से टूट कर पुनः ऑक्सीजन के एक अणु (O_2) और परमाणु (O) में टूट जाता है। इन प्रक्रियाओं के दौरान पराबैंगनी किरणों की ऊर्जा ऊष्मा में बदल जाती है जिससे स्ट्रेटोस्फिअर का ताप बढ़ने लगता है।

ओज़ोन के गुणों और उसके महत्त्व को समझने के पश्चात गॉर्डन डाब्सॅन ने 1928-58 के बीच ओज़ोन की मॉनिटरिंग के लिए एक 'वर्ल्ड वाइड नेटवर्क' स्थापित की।

ओज़ोन परत पर प्राकृतिक और मानवीय गतिविधियों का प्रभाव

प्राप्त डाटा के अध्ययन से पता चला कि ओज़ोन परत के घनत्व में बदलाव सौर गतिविधियों, सौर धब्बों, ज्वालामुखी आदि जैसे प्राकृतिक कारणों से होते रहते हैं। लेकिन ये बदलाव अस्थायी होते है जिससे परत की अपनी स्वाभाविकता बनी रहती है। लेकिन

1970 के आसपास ओज़ोन परत के पतला होने की जानकारी मिली। इससे धरती पर पराबैंगनी किरणों की बढ़ती उपस्थिति से मानव-स्वास्थ्य बिगड़ने का खतरा मंडराने लगा। वैज्ञानिकों को लगा कि इसमें वायुमंडलीय रसायनिक संरचना में बदलाव का हाथ होना चाहिये। इसके लिये केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के रसायनज्ञ-द्वय एफ.एस. रौलेण्ड तथा एम. मोलिना ने अपना शोध कार्य आरंभ किया। उन्होंने साश्चर्य देखा कि सी.एफ.सी. (क्लोरो-लोरो कार्बन) समूह के अणु स्ट्रेटोस्फियर के मध्य तक उपस्थित हैं। वहाँ पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में इन अणुओं के टूटने से क्लोरिन तथा ब्रोमीन के आयन मिलते हैं जो ओज़ोन परत का बहुत अधिक तेजी से क्षरण करते हुए अपूरणीय क्षति पहुँचाते हैं। क्षतिग्रस्त ओज़ोन परत खतरनाक पराबैंगनी किरणों को प्रभावी तरीके से रोकने में समर्थ नहीं रह पाती और वे आसानी से ट्रोपोस्फियर में प्रवेश कर जाती हैं।

अब यह स्पष्ट हो गया कि वायुमंडलीय रसायनिक संरचना में बदलाव में उद्योगों का हाथ होना चाहिये। जब औद्योगिक जगत पर वैज्ञानिकों ने नजर डाली तो उन्हें पता लगा कि यहाँ विभिन्न कार्यों के लिये 'क्लोरो-लोरो कार्बन' और इस जैसे कई अन्य रसायन भी बिना किसी नियंत्रण के उपयोग में लाये जा रहे हैं। इस तरह वातावरण में ओज़ोन परत को नुकसान पहुँचाने वाले अणुओं की लगातार वृद्धि इसी का परिणाम है।

अतीत में गोता -सिर्फ लाभ पर नज़र

अब थोड़ा अतीत में गोता लगाते हैं। निम्न-ताप को प्राप्त करने वाले उपकरणों में सल्फरडाई आक्साइड, अमोनिया, क्लोरोफार्म, और कार्बन टेट्राक्लोराइड जैसे रसायन प्रयुक्त हो रहे थे। लेकिन, बीसवीं सदी की तीसरी और चौथी दशक में इन रसायनों को सी.एफ.सी. (क्लोरो-लोरो कार्बन) से प्रतिस्थापित किया गया। वैज्ञानिकों का मानना था कि यह सस्ता, बेहतर और सुरक्षित है। इन पदार्थों के गुणों के कई और अनुप्रयोग सामने आये। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कीटनाशकों के लिये 'ऐरोसॉल' तैयार करने में इनका उपयोग शुरू हुआ। इसके बाद तो फोम के निर्माण, उच्च-स्तरीय सफाई, एअर-कंडिशनिंग, रेफ्रीजरेटिंग, सौन्दर्य सामग्री, स्प्रे, आदि के साथ ही अन्य कई औद्योगिक तथा सामान्य प्रयोजनों

में इनके उपयोगों की झड़ी लग गई। औद्योगिक दृष्टि से यह भारी सफलता साबित हुई लेकिन, अनुप्रयोगों में पर्यावरणीय दृष्टि गायब रही।

पर्यावरणीय दृष्टि से विचार

वैज्ञानिकों ने विचार किया कि सी.एफ.सी. (क्लोरो-लोरो कार्बन) समूह के पदार्थों के उपयोग के दौरान और उसके बाद इनके लिकेज़ को ठीक से रोक नहीं पाने के कारण हवा में इनकी स्वाभाविक उपस्थिति में वृद्धि हुई है। फिर इनके गुणों पर दृष्टि डाली गई तो पता चला कि ये 'नाइट्रोजन आक्साइड' तथा 'सल्फरडाई ऑक्साइड' की तरह जल में घुलनशील नहीं हैं। इस कारण इनके वायुमंडल में लम्बे समय तक बने रहने की संभावना अत्यधिक होती है। अपने लम्बे आयुकाल के कारण ये समूचे ग्लोब में घूमते हुए स्ट्रेटोस्फियर तक पहुँचने में सफल हो जाते हैं। जब इनके गुणों पर ध्यान दिया गया तब वैज्ञानिकों को ओज़ोन परत को नष्ट करने में इनकी अहम् भूमिका नज़र आई।

इस भूमिका को समझने के लिये रौलेण्ड तथा एम. मोलिना ने एक क्रियाविधि प्रस्तुत की जिसके अनुसार स्ट्रेटोस्फिअर में उपस्थित पराबैंगनी किरणें इन अणुओं में से पहले क्लोरिन को अलग करती है। फिर यह क्लोरिन वहाँ उपस्थित ऑक्सीजन परमाणु से मिल कर 'क्लोरिन ऑक्साइड' बनाती है। यह 'क्लोरिन ऑक्साइड' ओज़ोन अणु से मिल कर उसे दो ऑक्सीज़न के अणुओं में परिवर्तित करती है और क्लोरिन पुनः मुक्त हो जाती है। मुक्त हुई यह क्लोरिन पुनः ओज़ोन के अणु को तोड़ने की प्रक्रिया को दोहराने लगती है जिससे ओज़ोन परत पतली होने लगती है। जब इस क्रियाविधि को ध्यान में रखते हुए क्लोरिन के सामर्थ्य का ऑकलन किया गया तो ज्ञात हुआ कि एक क्लोरिन करीब एक लाख 'ओज़ोन' के अणुओं को तोड़ने में समर्थ होता है। यह अकल्पनीय और हैरान कर देने वाला आकलन था। इन वैज्ञानिकों ने अपने आकलन को एक शोधपत्र के रूप में सन् 1974 में प्रकाशित कराया। इन रसायनों से जुड़े व्यावसायिक घरानों में तहलका मच गया। डू पोंट (क्नच्वदज) जैसे औद्योगिक घरानों ने इन शोध परिणामों के विरोध में मुखर हो कर सामने आए। उन्होंने रौलेण्ड तथा मोलिना के शोध परिणामों को सिरे से नकार दिया तथा सी.एफ.

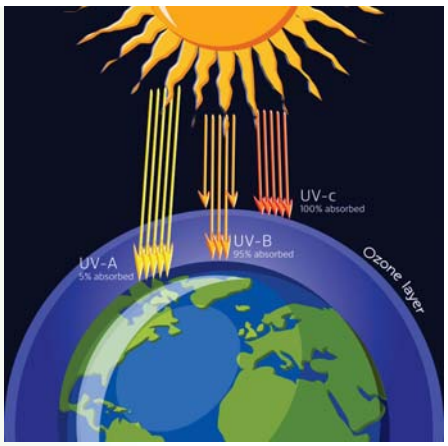

सी. (क्लोरो-लोरो कार्बन) उत्पादन से जुड़ी अपनी औद्योगिक गतिविधियों को जारी रखा। लेकिन, इसके बाद 1985 में जे. फार्मेन, बी. गार्डिनर तथा जे. शेंकलिन के जर्नल 'नेचर' में प्रकाशित एक शोध पत्र ने सबको झकझोर दिया।

ओज़ोन परत में छेद की खोज

फार्मन, गार्डिनर तथा शेंकलिन के शोधपत्र में अंटार्कटिका के आकाश में ओज़ोन परत में एक बहुत बड़े छेद के होने की जानकारी थी। इसके साथ ही इसमें पूर्व में रौलेण्ड तथा मोलिना द्वारा प्रस्तुत ओज़ोन-क्षय में सी.एफ.सी. (क्लोरो-लोरो कार्बन) केंद्रित क्रियाविधि की पुष्टि थी। इस प्रामाणिक जानकारी के बाद तो इस क्षेत्र में शोध गतिविधियों में बहुत तेजी से ईजाफा होने लगा। वायुमंडल में इन अणुओं की उपस्थिति का पता लगाने में अवरक्त स्पेक्ट्रोस्कोपी कारगर सिद्ध हुई। औद्योगिक, शहरी और अन्य स्रातों से लीक होने वाले सी. एफ.सी. (क्लोरो-लोरो कार्बन) के 'रियल-टाइम डाटा' प्राप्त करने के लिये 'अंतरिक्ष' में स्थापित 'उपग्रहों' (Sattelites) पर लगे स्पेक्ट्रोमीटर (Spectrometer) तथा रेडियोमीटर (Radiometer) ने इसकी पुष्टि की। तेजी से इस परत के क्षरण का संबंध स्पष्ट रूप से मानव-जन्य गतिविधियों से जुड़ा नजर आया। इन अध्ययनों ने रौलेण्ड तथा मोलिना के सही ठहरा दिया जिससे उन्हें 1995 में रसायन के नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया।

ओज़ोनछिद्र और ग्लोबल वार्मिंग

ओज़ोन छिद्र से ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव में कमी आती है। इसतरह, ओज़ोन परत के ठीक होने से थोड़ी गरमी बढ़ने की आशंका भी है। इसका कारण स्ट्रेटोस्फियर की ओज़ोन, पृथ्वी के वायुमंडल के उपरी ट्रोपोस्फियर के हिस्से की गैसों द्वारा उत्सर्जित ऊष्मा को सोख लेती है। इसका मतलब यह हुआ कि ओज़ोन छिद्र के भर जाने से जो ऊष्मा अंतरिक्ष में लौट रही थी, अब वह पुनः हमारे वायुमंडल में ही मौजूद रहने वाली है। अतः हमें ऐसा कुछ करना है जिससे ओज़ोन छिद्र भी भरे तथा ग्लोबल वार्मिंग से ग्रह भी बचे।

सोचने को मजबूर- `वियेना कंवेंशन' और `मांट्रियल प्रोटोकॉल'

प्राकृतिक सुरक्षा तंत्र ओज़ोन परत को हो रहे नुकसान की ख़बर ने सबको सोचने पर मजबूर कर दिया। अब मानव गतिविधि-जन्य यह खतरा अपने सबसे भयावह रूप में सामने था। वैज्ञानिक तृय जे.फार्मेन, बी. गार्डिनर तथा जे. शैंकलीन द्वारा खोजे गये ओज़ोन परत में छिद्र का मतलब यह निकला कि जो किरणें पृथ्वी सतह तक आने से रूकी हुई थी, अब वे अब निर्बाध रूप से आना शुरू हो गई हैं, जिससे संबंधित क्षेत्रों में त्वचा कैंसर और आँखों के मोतियाबिंद जैसे रोगों से पीड़ित लोगों की संख्या में भी बढ़ोतरी के साथ ही लोगों में रोगों से लड़ने की क्षमता में कमी तथा पौधों के विकार में कमी भी देखी गयी। अतः स्वाभाविक ही सब ओर चिंता व्याप्त हो गई। ओज़ोन परत में क्षरण ने ग्लोबल समस्या का रूप धारण कर लिया। इस समस्या के समाधान का एक ही रास्ता नजर आने लगा और वह था, ऐसे उत्पादों के निर्माण तथा उपयोग पर तत्काल रोक लगाई जाये तथा इनके स्थान पर ओज़ोन को नुकसान न पहुँचाने वाले विकल्पों से प्रतिस्थापित किया जाये। यह कार्य सबको साथ लाये बगैर संभव नहीं था। लेकिन सबको साथ लाना आसान कार्य भी नहीं था क्योंकि इसमें आर्थिक पहलू जुड़ा हुआ था। जहाँ तक ग्लोब की बात है, इसमें विकासशील तथा अविकसित देश भी शामिल हैं जिनका मानना है कि विकसित देशों द्वारा ही अपने विकास के लिये यह कृत्य किया गया है। उनके विकास की कीमत अन्य देश क्यों भुगतें? उनकी इस सोच के बावजूद यह भी सत्य है कि यह आपदा बिना किसी में अंतर किये सबको चपेट में लेने वाली है। अतः मिल-बैठ कर ही विचार कर समस्या से निपटने के लिये किसी सर्वमान्य फार्मूले को खोजने में ही भलाई है। अंततः साथ बैठ कर चर्चा करने पर सहमति बनी तथा सन् 1985 में

वियेना शहर में एक कन्वेंशन का आयोजन हुआ।

'वियेना कन्वेंशन' में योजनाबद्ध तरीके से सी.एफ.सी. के उपयोग को नियंत्रित तरीके से कम करने पर विचार किया गया। इसके बाद सन् 1987 में मांट्रियल में एक बैठक हुई जिसमें एक ड्राट तैयार किया गया। इसे 'मांट्रियल प्रोटोकॉल' के नाम से जाना जाता है। इसमें विकासशील और अविकसित देशों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्रावधान रखे गये। सभी सहभागी देश सन् 2050 तक '1980 के ओज़ोन स्तर' को प्राप्त करने के लिए कदम उठाने को सहमत हो गए। इसी समय प्रत्येक वर्ष 16 सितम्बर को 'ओज़ोन दिवस' के रूप में मनाये जाने का निर्णय भी लिया गया तब से यह आज तक लगातार मनाया जा रहा है।

क्या `मांट्रियल प्रोटोकॉल' के अंतर्गत उठाये गये कदमों से फायदा मिला ?

आईआईटी खड़गपुर के केंद्र कोरल (CORAL, सेंटर ऑफ ओशन, रिवर्स, एट्मॉसफियर एण्ड लॉ-साइंस) के अनुसंधानकर्ताओं जयनारायण कुट्टीप्पुरत और उनके साथियों पंकज कुमार, पृजित जे. नायर तथा पी.सी. पाण्डे की टीम ने की ओज़ोन परत के अध्ययन पर एक शोध प्रोजेक्ट हाथ में लिया ताकि जाना जा सके कि मांट्रियल प्रोटोकाल के अंतर्गत उठाये गये हमारे कदमों का क्या असर हो रहा है? अपने शोध के आधार पर एन्होंने एक रिपोर्ट तैयार की है, जिसमें 1979 से लगाकर 2017 तक के डाटा का विश्लेषण है। इनमें शरद से लगा कर बसंत ऋतुओं में भारत के मैत्री स्टेशन सहित अंटार्कर्टिका पर स्थित विभिन्न रिसर्च स्टेशनों से अलग-अलग ऊँचाइयों पर लिए गये डाटा शामिल हैं। इन डाटा को बलून तथा उपग्रह से प्राप्त कर कम्प्यूटर की सहायता से विश्लेषित किया गया। इनसे पता चला कि 1987 के बाद अंटार्कटिका के ऊपर के आकाश में ओज़ोन की संतृप्तता में 1987 के बाद से लगातार जो कमी आती जा रही थी, वह रूकी है तथा 2001 से 2017 के बीच के वर्षों में इसमें उल्लेखनीय कमी आई है। इसतरह यह 'मांट्रियल प्रोटोकाल' के बाद विश्व के देशों द्वारा उठाये गये कदमों का सकारात्मक प्रभाव है। यह शोध अपने आप में ऐसा पहला शोध है जिसमें करीब चार दशकों के डाटा का विश्लेषण है। और, चूँकि ओज़ोन परत में रिकवरी-प्रोसेस बहुत

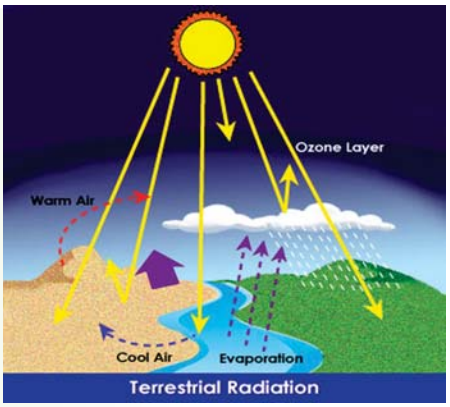

धीमी होती है अतः इन शोध परिणामों ने हमें राहत प्रदान की है कि हम सही दिशा में हैं। नासा ने भी 2018 में इसी आशय की एक रिपोर्ट जारी की है। इसतरह ओज़ोन परत धीरे-धीरे रिपेयर होती जा रही है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि हमें खुश और संतुष्ट हो कर बैठ जाना है। क्योंकि, अभी मुख्य समस्या सीएफसी-11 से जुड़ी हुई है जिसे चीन लगातार उपयोग में ला रहा है। अगर इसपर रोक नहीं लगी तो अंटार्कटिका की परत को ठीक होने में करीब 7 से 20 वर्षों की और देरी भी हो सकती है।

`मांट्रियल प्रोटोकॉल' के प्रावधान

'मांट्रियल प्रोटोकॉल' के अंतर्गत 'सीएफसी' के विकल्प के रूप में प्रथम फ़ैज में 'एचसीएफसी' के उपयोग पर आम सहमति बनी। 'एचसीएफसी' में हाइड्रोजन की उपस्थिति इसे बेहतर विकल्प के रूप में प्रस्तुत करती है। इसके बाद द्वितीय फ़ैज में इसे और अधिक बेहतर विकल्प 'एचएफसी' से प्रतिस्थापित किया जाने पर विचार हुआ क्योंकि इसमें प्रमुख 'अभियुक्त' 'क्लोरिन' के न होने से यह ओज़ोन परत को नुकसान पहुँचाने में समर्थ नहीं होती है। लेकिन, आगे शोध से पता चला कि 'एचएफसी' ओज़ोन परत को तो बचाने में कारगर है पर यह एक बहुत ही प्रभावी 'ग्लोबल वार्मिंग एजेंट' भी है। 'ग्लोबल वार्मिंग एक अन्य समस्या है, जो मौसम परिवर्तन के रूप में

अपनी दस्तक दे रहा है और वैश्विक चिंता का बड़ा कारण बन रहा है।

समेकित प्रयास- परत भी बचे और ग्लोबल वार्मिंग भी न हो

वैज्ञानिकों ने महसूस किया कि ओज़ोन परत को बचाने के वर्तमान तरीके ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के प्रयासों को धक्का पहुँचायेंगे। यह स्वीकार्य नहीं हो सकता। ज्ञातव्य हो कि ग्लोबल वार्मिंग की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए ग्रीनहाउस गैसों को कम करने की दिशा में बहुत गंभीरता से कार्य जा रहे हैं (हाल ही में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण 'पेरिस समझौता' भी हुआ है) और सभी देश इन गैसों के उत्सर्जन को घटाने के प्रयास कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिकों ने विचार किया कि ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने वाले ऐजेंट 'एचएफसी' को 'ओ.डी.एस.' का अच्छा विकल्प नहीं माना जा सकता है। इसे ध्यान में रखते हुए वर्तमान में वैज्ञानिकगण ऐसे पदार्थों की तलाश में हैं जो पृथ्वी को 'ओज़ोन परत' के साथ ही 'ग्लोबल वार्मिंग' के खतरे से भी बचाने में समर्थ हो सकें।

विश्वबैंक की चेतावनी

ओज़ोन परत को बचाने के हमारे वर्तमान प्रयासों का ग्लोबल वार्मिंग तथा जलवायु परिवर्तन के विरूद्ध चल रही लड़ाई पर असर पड़ेगा। यही कारण है कि हमें ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के अपने प्रयासों को और अधिक तेज करना होगा इसमें सबसे पहले हमें कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने में बहुत अधिक तेजी दिखाना होगी। कम्प्यूटर मॉडलों के आधार पर मिले निष्कर्षों के आधार पर विशेषज्ञों का मानना है कि ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव से विश्व-इकॉनामी बहुत बुरी तरह से प्रभावित होगी। इसीलिए विश्वबैंक ने चेतावनी देते हुए कहा है कि 'अगर हम कार्बन उत्सर्जन में कमी नहीं ला सके तो 2030 तक करीब 10 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे पहुँच जाएंगे। हर हाल में धरती पर जीवन और जीवनदायिनी परिस्थितियाँ सुरक्षित रहना चाहिए। इसलिए आज विश्व के लोगों में जिस तरह अपने-अपने 'कार्बन फुटप्रिंट' को छोटा करने की चेतना विकसित हो रही है, उसी तरह की चेतना ओज़ोन परत को बचाने के लिये भी आवश्यक है।

kapurmaljain2@gmail.com

पादप रसायनों
का खानपान में महत्व

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में पीएच-डी. की उपाधि प्राप्त की। आप टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान मुंबई के होमी भाभा विज्ञान केन्द्र में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के रूप में आपकी अपार ख्याति है जोकि हिन्दी में आपके व्यापक लेखन से निर्मित हुई है। आपके 250 से अधिक लेख तथा 22 पुस्तकें प्रकाशित हैं। राजभाषा गौरव पुरस्कार, होमी जहाँगीर भाभा स्वर्ण पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, राजभाषा भूषण पुरस्कार, इस्वा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ.मिश्र मुंबई में निवास करते हैं।

पादपरसायन, जिन्हें अंग्रेजी में फाइटोकेमिकल्स (Phytochemicals) कहा जाता है, वे पेड़ पौधों में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले रासायनिक यौगिक होते हैं। ग्रीक भाषा में 'फाइटो' का अर्थ होता है वनस्पति होता है। इन रसायनों से परिपूर्ण फलों व सब्जियों को भोजन में लेने की सिफारिश वैज्ञानिकों तथा पोषण विशेषज्ञों द्वारा एक अरसे से की जाती रही है। यद्यपि कुछ विशेष पादपरसायनों द्वारा मिलने वाले लाभों तथा उनके गुणों के बारे में अनुसंधान सीमित ही हैं। फलों और सब्जियों में रोगों से लड़ने वाले प्रति-ऑक्सीकारक और पादपरसायन पाये जाते हैं। पादपरसायन हृदय रोग, कैंसर, टाइप-2 मधुमेह जैसे रोगों से लड़ने में मदद करते हैं। पादपरसायन तकरीबन 4000 तरह के होते हैं। ये यौगिक वानस्पतिक खाद्य पदार्थों के रंग, स्वाद और गंध आदि गुणों के लिए उत्तरदायी होते हैं। उदाहरणार्थ ब्रोकोली का कड़वा स्वाद और लहसुन की तेज गंध। ये दोनों गुण विशेष पादपरसायनों की वजह से होते हैं। ये पादपरसायन रासायनिक यौगिकों के एक बड़े और विविध समूह का हिस्सा हैं। उनमें से कुछ हैं टमाटर में मौजूद लाइकोपीन, सोया में आइसोफ्लैवोन्स और फलों में फ्लैवोनॉइड्स। कुछ पादपरसायनों का विशेष जैविक महत्व भी होता है जिनमें कैरोटिनॉइड या फ्लैवोनॉइड्स शामिल हैं।

पोषक तत्वों के रूप में पादपरसायन

सदियों से उनके कोशिकीय क्रियाओं या प्रक्रियातंत्र के विशिष्ट ज्ञान के बिना भी पादपरसायन को औषधि माना गया है। उदाहरण के लिए हिप्पोक्रेटीज ने विलो वृक्ष (बेंत की तरह पतली लचकदार डाली वाला पेड़) के पत्तों को बुखार के शमन के लिए निर्धारित किया था। सैलिसिन में प्रतिशोथ और दर्द से राहत देनेवाले गुण होते है। शरीरक्रियात्मक गुणों वाले कुछ पादपरसायन जटिल कार्बनिक अणुओं के बजाय मूलतत्व भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए कई फलों और सब्जियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाला सेलेनियम एक आहारीय खनिज है। यह थायरॉइड हार्मोन, चयापचय क्रिया और प्रतिरक्षा कार्य सहित प्रमुख उपापचयी प्रक्रियाओं में अहम् भूमिका निभाता है। यह एक आवश्यक पोषक तत्व है और प्रति-ऑक्सीकारक ग्लूटाथाइओन के एन्जाइमी संश्लेषण में एक सहकारक के रूप में कार्य करता है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि ये यौगिक हमारे शरीर के अंदर रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। अध्ययन के निष्कर्षों से पादपरसायनों की निम्नलिखित क्षमताओं का पता चला है -

- वे प्रतिरक्षा प्रणाली को उत्तेजित करते हैं।
- हमारे खाने, पीने और सांस से लेने वाले पदार्थों को कैंसर जनक बनने से रोकते हैं।
- कैंसर के विकसित होने की संभावना को बढ़ाने वाली शोथ को कम करते हैं।
- डीएनए क्षय को रोकने और डीएनए सुधार में मददगार होते हैं।
- कैंसरकारी कोशिकाओं के ऑक्सीकारक नुकसान को कम करते हैं।
- कैंसर कोशिकाओं के विकास दर को धीमा करते हैं।
- पुनः उत्पन्न होने से पहले क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को आत्मघात करने के लिए सक्रिय करते हैं।
- हार्मोन को विनियमित करने में ये बहुत मददगार होते हैं।

1	कैरोटिनॉइड (बीटाकैरोटीन, लाइकोपीन, ल्यूटीन, जैन्थिन्स	ब्रोकली, कद्दू, शकरकंद, गाजर, टमाटर लाल मिर्च, हरा कोलार्ड, ब्रसल स्प्राउट, लेट्यूस पत्तेदार साग, मीठे आलू, विन्टर स्क्वैश, खुबानी, खरबूजा, मौसम्बी, संतरा और तरबूज सहित लाल, नारंगी और हरे रंग के फल और सब्जियां	कैंसर कोशिकाओं के विकास को बधित कर सकते हैं, प्रति-ऑक्सीकारक के रूप में कार्य करते हैं और असंक्राम्य प्रणाली में सुधार करते हैं। दृष्टि, त्वचा स्वास्थ्य, हड्डी के स्वास्थ्य, हृदय के स्वास्थ्य नेत्र के स्वास्थ्य में लाभ, ल्यूटीन पादपरसायन आंख के मैक्युला में पाया जाता है।
2	फ्लैवोनॉइड्स ऐन्थोसाइनिन्स क्यूरसेटिन	सेब, काली बेरी, स्ट्रॉबेरी, आलू बुखारा रास्बेरी, खट्टे फल, लाल प्याज, लाल आलू, लाल मूली, सोयाबीन और सोया उतपादों (टोफू, सोया दूध आदि) कॉफी, चाय	सूजन और ट्यूमर के विकास को बाधित कर सकते हैं, शरीर में असंक्राम्य और निरा विषकारी एंजाइमों के निर्माण में सहायक हो सकता है। रक्त वाहिका स्वास्थ्य में लाभ
3	इण्डोल्स और ग्लूकोसिनोलेट्स (सल्फोरेफेन)	क्रूसिफेरस सब्जियां (ब्रोकोली, गोभी, कोलार्ड साग, फूलगोभी और स्प्राउट्स)	कैंसरकारी तत्व के निराविषीकरण का कारण होता है, कैंसर से संबंधित हार्मोन की उत्पादन को सीमित रखती है, कैंसरकारी तत्व और ट्यूमर के विकास को प्रतिबंध करती है।
4	इनोसिटोल (फाइटिक अम्ल)	मक्का से चोकर, जई, चावल, राई और गेंहू, नट, सोयाबीन और सोया उत्पादों (टोफू, सोया दूध इडामेम, आदि)	कोशिकाओं के विकास को धीमा करते हैं और प्रति-ऑक्सीकारक के रूप में कार्य करते हैं।
5	आइसोफ्लैवोन्स (डाइडज़िन और जेनिस्टेन)	सोयाबीन और सोया उत्पादों (टोफू सोया दूध इडामेम, आदि	ट्यूमर के विकास को रोक सकते हैं, कैंसर से संबंधित हार्मोन के उत्पादन को सीमित करने और आम तौर पर प्रति-ऑक्सीकारक के रूप में काम करते हैं। रजोनिवृत्ति, स्तन कैंसर, हड्डी के स्वास्थ्य, जोड़ों के सूजन में लाभकारी
6	आइसोथायोसाइनेट्स	क्रूसिफेरस सब्जियां (ब्रोकोली, गोभी, फूलगोभी और बसेल्स स्प्राउट्स)	कैंसरकारी तत्व को निराविषीकरण के लिए प्रेरित कर सकते हैं, ट्यूमर के विकास को बाधित करते हैं और प्रति-ऑक्सीकारक के रूप में कार्य करते हैं।
7	पॉलिफीनॉल्स एलाजिक अम्ल और रैसवेराट्रॉल	हरी चाय, अंगूर, शराब, जामुन खट्टे फल, सेब, साबुत अनाज और मूंगफली, रेड वाइन	कैंसर बनने को रोक सकते हैं, जलन को रोकने और प्रति-ऑक्सीकारक के रूप में कार्य करते हैं हृदय के स्वास्थ्य, फेफड़ो के स्वास्थ्य में लाभ
8	टरपीन्स (जैसे परएलिल एल्कोहॉल, लिमोनिन कारनोसॉल	चेरी, खट्टे फल के छिलके, मेंहदी	कोशिकाओं को कैंसरग्रस्त होने से बचाते हैं, कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को रोकते हैं, असंक्राम्य (प्रतिरक्षा) कार्य की शक्ति बढ़ाते हैं, कैंसर से संबंधित हार्मोन के उत्पादन को सीमित करते हैं, विषाणु से लड़ते हैं, प्रति-ऑक्सीकारक के रूप में कार्य करते हैं।

खाद्य प्रसंस्करण और पादपरसायन

ताजा कटे खाद्य पदार्थों में पादपरसायन प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। पकाने से ये यौगिक नष्ट हो जाते हैं। प्रसंस्करण विधियों से भी खाद्यपदार्थों में पादपरसायनों की मात्रा कम हो जाती है। दरअसल खाना पकाने के दौरान ऊष्मीय विधटन से पादपरसायनों की मात्रा तथा गुणवत्ता में ह्रास होता है। लेकिन टमाटर में पाये जाने वाले लाइकोपीन जैसे कैरोटिनॉइड के साथ ऐसा नहीं होता क्योंकि ये कोशिकीय झिल्ली से मुक्त होने के कारण टिकाऊ होते हैं। अध्ययन से पता चलता है कि पादपरसायनों से युक्त खाद्यपदार्थों और पेयपदार्थों के सेवन से तमाम बीमारियों को रोकने में मदद मिलती है। वर्ष 2010 के आहार संबंधी दिशा निर्देशों में इस बात की संस्तुति है कि हमें फल, सब्जियां, साबुत अनाज ज्यादा खाना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि इनसे हृदयवाहिनी के रोग, मधुमेह, न्यूरोडीजनरेशन, पार्किंसन्स और अल्ज़ाइमर जैसे मस्तिष्क संबंधी बीमारियों से बचाव होता है। पादपरसायन गैर-पोषक वनस्पति रसायन होते हैं जिनमें सुरक्षात्मक या रोगनिवारक गुण होते हैं। ये गैरजरूरी पोषक तत्व हैं क्योंकि ये जीवन को बनाए रखने के लिए मानव

शरीर के लिए अत्यावश्यक नहीं हैं। ये इसलिए जाने जाते हैं कि पेड़-पौधे खुद को बचाने के लिए इन रसायनों का उत्पादन करते हैं। लेकिन हाल के अनुसंधान से यह पता चला है कि ये यौगिक तमाम बीमारियों से रक्षा करने में इंसान के लिए भी बेहद मददगार हो सकते हैं।

पादपरसायनों के कार्य

पादपरसायन कई तरह के होते हैं। उनकी कार्यप्रणाली भी अलग होती है जैसे -

- प्रति-ऑक्सीकारक (एंटी-ऑक्सीडेंट)- बहुत से पादपरसायन प्रति-ऑक्सीकारक गुणधर्म वाले होते हैं। वे जारणकारी यानी उम्रवृद्धि के साथ होने वाले चयापचय संबन्धी क्षतियों से कोशिकाओं की रक्षा करते हैं, और कुछ तरह के कैंसर होने के जोखिम को भी कम करते हैं।
- प्रति-ऑक्सीकारक गुणधर्म वाले पादप रसायन-एलिल सल्फाइड (प्याज, लहसुन), कैरोटीनॉइड्स (फल, गाजर), फ्लैवोनॉइड्स (फल, सब्जियां), पॉलिफीनॉल्स (चाय, अंगूर)।

- हार्मोन संबंधी कार्य करनेवाले- सोया में पाये जाने वाले आइसोफ्लैवोन्स गुणधर्म में मानव एस्ट्रोजन का अनुसरण करते हैं और महिलाओं में रजोनिवृत्ति के लक्षणों तथा अस्थि-सुषिरता (हड्डियों की कमजोरी) को कम करने में मदद करते हैं।
- एंजाइमों को उत्तेजित करनेवाले- पत्तागोभी में पाए जाने वाले इन्डोल्स, एस्ट्रोजन को कम प्रभावी और स्तन कैंसर के जोखिम को कम करनेवाले एंजाइमों को उत्तेजित करते हैं। एंजाइमों की सक्रियता को बाधित करने वाले पादपरसायन हैं प्रोटिएज अवरोधक (सोया और फलिया), टरपीन्स (खट्टे फल और चेरी)।
- डीएनए के साथ हस्तक्षेप करने वाले- फलियों में पाये जाने वाले सैपोनिन्स डीएनए के साथ दखल देते हैं। इनसे कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि दर में कमी होती है। काली मिर्च में पाया जाने वाला केपसायसिन यौगिक कैंसरकारी तत्वों से डीएनए को सुरक्षा प्रदान करता है।
- प्रति-जीवाणु (एंटीबैक्टीरियल) प्रभाव- लहसुन में पाये जाने वाले पादपरसायन ऐलिसिन में प्रति-जीवाणु गुण होता है।
- शारीरिक क्रिया- रोगाणुओं के मानव कोशिका भित्ति से आसंजन को रोकने के लिए कुछ पादपरसायन कोशिकाभित्ति से भौतिक रूप से आबद्ध हो जाते हैं। करौंदे (क्रेनबेरी) के आसंजन विरोधी गुण के लिए प्रोऐन्थोसायनिडीन जिम्मेदार होते हैं। करौंदे के सेवन से मूत्र मार्ग में संक्रमण का खतरा कम होता है और दंत स्वास्थ्य में सुधार होता है।

पादपरसायन से स्रोत

पादपरसायनयुक्त खाद्य पदार्थ अरसे से हमारे दैनिक आहार का हिस्सा रहे हैं। वास्तव में, चीनी या शराब जैसे परिष्कृत खाद्य पदार्थों को छोड़कर ज्यादातर खाद्य पदार्थों में पादपरसायन मौजूद होते हैं। कुछ खाद्य पदार्थ जैसे साबुत अनाज, सब्जियाँ, फलियाँ, फल और औषधि पौधों में कई पादपरसायन उपस्थित होते हैं। आहार में अधिक से अधिक पादपरसायन ग्रहण करने का सबसे आसान तरीका यह है कि हम फल (करौंदा, चेरी, सेब) और सब्जियां (फूलगोभी, पत्तागोभी, गाजर, ब्रोकोली) अधिक से अधिक लें। पोषण विशेषज्ञों का कहना है कि हमें हर दिन कम से कम पांच तरह के फल, तथा सब्जियां खाना चाहिए। फलों और सब्जियों में खनिज, विटामिन और फाइबर मौजूद होते हैं। ये हमारे शरीर में संतृप्त वसा को कम करते हैं। संतृप्त वसाओं का अधिकता सेहत के लिए ठीक नहीं होती।

प्रतिऑक्सीकारक के तौर पर पादपरसायन

प्रति-ऑक्सीकारक वे पादपरसायन हैं जो मुक्त मूलकों की वजह से होने वाले नुकसान से हमारी कोशिकाओं की रक्षा करते हैं। अनुसंधान से पता चला है कि प्रति-ऑक्सीकारक उन मुक्त मूलकों के संभाव्य नुकसान को रोकने में मददगार होते हैं जो कैंसर और हृदय रोग के साथ जुड़े होते हैं। प्रति-ऑक्सीकारक ज्यादातर फलों और सब्जियों में प्रचुरता से पाये जाते हैं।

हाल के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि प्रति-ऑक्सीकारक कैंसर के खतरे को कम करते हैं। इनसे हृदय के स्वास्थ्य में सुधार आता है। व्यापक शोध तथा अध्ययन से यह पता चला है कि प्रति-ऑक्सीकारक कैंसर का जोखिम कम कर सकते हैं। अध्ययन यह साबित करता है कि बीटा-कैरोटीन, विटामिन-ई और सेलेनियम जैसे प्रति-ऑक्सीकारकों का संयोजन कैंसर के प्रसार को उल्लेखनीय रूप से कम करता है। यह तो तथ्य है कि कोलेस्टेरॉल हृदय रोग का कारण बनता है और कोलेस्टेरॉल का सेवन कम करने की कोशिश करते हैं। लेकिन धमनियों में वसा यानी चरबी के जमा होने का सबसे महत्वपूर्ण कारण कम धनत्व वाले लिपोप्रोटीन कोलेस्टेरॉल का ऑक्सीकरण है। पूरक आहार के रूप में प्रति-ऑक्सीकारकों के उपयोग से हृदयरोग के जोखिम को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इस तरह उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि पादपरसायन हमारे स्वास्थ्य तथा आरोग्य में बहुप्रकारेण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए हमारे खानपान में पादपरसायनों का समुचित समावेश बहुत जरूरी है।

vigyan.lekhak@gmail.com

नींद का विज्ञान

जारी है अनुसंधान

सुभाष चंद्र लखेड़ा

रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान (डिपास), डीआरडीओ से वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद से सेवानिवृत सुभाष चंद्र लखेड़ा लोकप्रिय विज्ञान लेखक और बेबाक वक्ता हैं। डिजिटल मंचों पर वे पिछले कुछ वर्षों से अपने यात्रा संस्मरणों को समय-समय पर लिखते रहे हैं। ये संस्मरण वैज्ञानिक आधार पर इतने खरे उतरते हैं कि पाठकों ने इसे एक नई विधा का स्वरूप मान लिया। सुभाष चंद्र लखेड़ा हार्डकोर विज्ञान संबंधी शोध के समानान्तर आम जन को विज्ञान की गूढ़ बातें सरल भाषा में साझा करते आये हैं। आप दिल्ली में रहते हैं।

हम अपनी जिंदगी का एक तिहाई हिस्सा नींद में बिताते हैं। अमेरिकी आविष्कारक थॉमस एडिसन (1847 -1931) का कहना था कि सोना समय की बरबादी है। नेपोलियन, फ्लोरेंस नाइटिंगेल और मार्गरेट थैचर प्रतिदिन सिर्फ चार घंटे सोते थे। हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु के बारे में भी यही कहा जाता है। खैर, हमें नींद क्यों आती है अथवा हम क्यों सोते हैं? यह सवाल वैज्ञानिकों को हजारों वर्षों से परेशान करता रहा है और ताज्जुब की बात है कि आज भी नींद से जुड़ी कई बातें वैज्ञानिकों के लिए अबूझ पहेलियाँ बनी हुई हैं। मजेदार बात यह भी है कि विभिन्न प्राणियों में नींद की समयावधि भी भिन्न-भिन्न है। अपने आलसीपन के लिए मशहूर चमगादड़ और अजगर प्रतिदिन क्रमश बीस और अठारह घंटे सोते है तो बाघ, बिल्ली, चिंपांज़ी, भेड़, हाथी और जिराफ प्रतिदिन औसतन क्रमश 15.8, 12.1, 9.7, 3.8, 3.3 एवं 1.9 घंटे नींद में बिताते हैं। नींद के दौरान हमारे शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं। हमारा धमनीय रक्तदाब कम हो जाता है। नाड़ी की धड़कने की दर कम हो जाती है। त्वचा की रक्त-वाहिकाएं विस्तारित हो जाती हैं। आमाशय पथ की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। मासपेशियां पूर्णतया विश्रामावस्था में रहती हैं और चयापचय (मेटाबोलिज्म) की दर में दस से बीस प्रतिशत की गिरावट आ जाती है। नींद के अभाव में प्रारंभ में तंत्रिका तंत्र के अति सूक्ष्म कार्य प्रभावित होते हैं। फलस्वरूप भावदशा, अभिप्रेरणा और ध्यान पर बुरा प्रभाव पड़ता है। लम्बे समय तक नींद से वंचित रखे जाने पर व्यक्ति विशेष की प्रमस्तिष्कीय एवं स्वचालित, दोनों तरह की क्रियाएं प्रभावित होती हैं। प्रकंपन, उच्चारण दोष, अक्षि दोलन के साथ-साथ पलकें भी असामान्य रूप से बंद होने लगती हैं। नींद हमारी स्मरण शक्ति को मजबूत करती है।

मिस्र के निवासी आज से तीन हजार वर्ष पूर्व अनिद्रा के उपचार के लिए अफ़ीम का प्रयोग करते थे। लगभग छह सौ वर्ष ईसा पूर्व जन्मे आचार्य सुश्रुत के अनुसार 'निद्रा स्वभाव से ही सब प्राणियों में होती है। तम की प्रधानता वाले प्राणियों में दिन और रात में नींद आती है। रजोगुण की अधिकता वालों को बिना कारण के नींद आती है। सत्त्वगुण की प्रधानता वालों को आधी रात के समय आती है। क्षीण कफ़ वाले, वात प्रधानता वाले, मानसिक और शारीरिक दुःख से पीड़ित व्यक्तियों को नींद नहीं भी आती। "चार सौ साठ वर्ष ईसा पूर्व जन्मे प्रसिद्ध दार्शनिक - चिकित्सक हिपोक्रेटीज़ स्वस्थ तन और मन के लिए नींद के महत्त्व से परिचित थे। नींद के विषय में तीन सौ वर्ष ईसा पूर्व जन्मे महर्षि चरक ने कहा था - "सुखं शेते सत्यवक्ता सुखं शेते मितव्ययी। हितभुक् मितभुक् चैव तथैव विजितेन्द्रियः।। अर्थात सत्य बोलने वाला, मर्यादित व्यय करने वाला, हितकारक पदार्थ आवश्यक प्रमाण में खाने वाला तथा जिसने इन्द्रियों पर विजय पायी हो, वह चैन की नींद सोता है।"

बहरहाल, हमें नींद क्यों, कब और कैसे आती है? इन प्रश्नों पर विद्वानों ने कई सौ वर्ष ईसा पूर्व से विचार करना शुरू कर दिया था। प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू (384 ईसा पूर्व-322 ईसा पूर्व) का मानना था कि आमाशय से ऊपर उठती हुई 'गरम वाष्प' प्राणियों में नींद पैदा करती है। कुल मिलाकर, उन्नीसवीं सदी के मध्य तक 'नींद' वैज्ञानिकों के लिए एक ऐसा रहस्यमय विषय बना रहा जिसके बारे में वे अपने सारे प्रयत्नों के बावजूद कुछ अधिक न जान सके। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जहां एक ओर कुछ विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया कि किसी प्राणी के मस्तिष्क में जब खून की मात्रा बढ़ने लगती है तो उसे नींद आती है, वहां दूसरी ओर कुछ विद्वानों का विचार था कि मस्तिष्क में खून की कमी यानी प्रमस्तिष्कीय अरक्तता (सेरेब्रल एनीमिया) नींद पैदा करती है। इन विद्वानों का

तर्क था कि नींद की प्रक्रिया के प्रारंभ में मस्तिष्क को पहुंचने वाले खून की सामान्य मात्रा में कमी होने लगती है। शरीर में रक्त का पुनर्वितरण होता है और मस्तिष्क को सामान्यावस्था में पहुँचने वाले रक्त की मात्रा का कुछ भाग शरीर के दूसरे भागों, विशेषकर आहारनाल में पहुँचने लगता है। फलस्वरूप, जहाँ एक ओर उस समय के कुछ चिकित्सक अच्छी नींद लेने के लिए सिर के नीचे कोई तकिया न रखने की सलाह देते थे, वहां ''अरक्तता'' के विचार को मानने वाले चिकित्सक खूब मोटे तकियों पर सिर रखकर सोने की सलाह देते रहे।

इन शरीरक्रिया संबंधी विचारों के साथ - साथ उन्हीं दिनों कुछ विद्वानों ने यह विचार प्रकट किया कि उद्दीपन के अभाव में प्राणी को नींद आती है। उनका कहना था कि यदि जीव को निरंतर सक्रिय करते रहें तो वह जागता रहेगा। इन विद्वानों का यह विचार अधिक समर्थन प्राप्त न कर सका क्योंकि इस तथ्य से हम परिचित हैं कि भारी शोर-शराबे के बीच में भी हम सो सकते हैं और कभी-कभी रात्रि में व्याप्त पूर्ण सन्नाटे के बावजूद हमारी पलकों से नींद उड़ी रहती है। बीसवीं सदी के प्रारंभ में स्विस शरीरक्रिया विज्ञानी इदवा क्लपारैड (Édouard Claparède, 1873-1940) ने बताया कि नींद उद्दीपन की कमी के कारण होने वाली निष्क्रिय क्रिया नहीं है अपितु प्राणियों की अन्य दूसरी मूल प्रवृतियों की भांति एक सक्रिय क्रिया है। इसका उद्देश्य हमारे शरीर को चयापचय के कारण पैदा हुए वर्ज्य पदार्थों से नशीला एवं परिक्लांत होने से बचाना है।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में कुछ वैज्ञानिक उन निद्रा पदार्थों की खोज करते रहे जो जागरण के दौरान मस्तिष्क में एकत्रित होते रहते हैं और एक क्रांतिक स्तर पर पहुँचकर प्राणी को सोने के लिए विवश करते हैं। उस समय तक लगाये गए अनुमानों के अनुसार इन निद्रा पदार्थों में लैक्टिक अम्ल, कार्बन डाइऑक्साइड, कोलेस्टेरॉल, ल्यूकोमेन समूह के रसायन तथा चयापचय के दौरान पैदा होने वाले टॉक्सिक ऐमाइन एवं यूरोटॉक्सिन प्रमुख थे। थेरी विलहम प्रेयर (Thierry Wilhelm Preyer,1841-1897) नामक ब्रिटिश मूल के जर्मन वैज्ञानिक प्रेयर ने विचार प्रकट किया कि जागते रहने के दौरान किए जाने वाले दैहिक एवं मानसिक कार्यों के कारण शरीर में लैक्टिक अम्ल बनता है। लैक्टिक अम्ल का यह जमाव

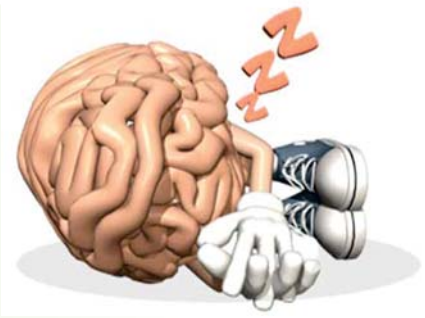

एक स्तर विशेष पर पहुंचकर प्रमस्तिष्क प्रभाग में श्वासावरोध (ऑक्सीजन की कमी एवं कार्बन डाइऑक्साइड की वृद्धि) की स्थिति उत्पन्न करता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति विशेष को नींद आने लगती है। बहरहाल, प्रेयर की इस अवधारणा से उनके समकालीन जर्मन चिकित्सक एवं शरीरक्रिया वैज्ञानिक रेमंड एमिअल डूबवा (Raymond Emil Dubois,1818-1896) ने असहमति जताई। उनका विचार था कि शारीरिक क्रियाओं के कारण शरीर के भीतर कार्बन डाइऑक्साइड गैस का संचय होता रहता है। यह गैस एक स्तर विशेष पर पहुँचकर तंत्रिका तंत्र की ऑक्सीकरण क्रियाओं पर निरोधी प्रभाव डालती है। फलस्वरूप, प्राणी का तंत्रिका तंत्र शिथिल होने लगता है और उसे नींद महसूस होने लगती है। खैर, डूबवा की यह परिकल्पना अधिक दिन न टिक पाई। वर्ष 1907 में फ्रांस के दो वैज्ञानिकों, रैनय लेजौंध (Rene Legendre) एवं हैनरी पिओन (Henri Pieron) ने देखा कि कई दिनों तक लगातार जगाये रखने के बावजूद कुत्तों के खून में कार्बन डाइऑक्साइड गैस की मात्रा में कोई वृद्धि नहीं हुई। उन्होंने प्राकृतिक निद्रा पदार्थों को प्राप्त करने के लिए कई प्रयोग किए। उन्होंने 6 से लेकर 15 दिन की अवधि तक जबरदस्ती जगाए गए कुत्तों के प्रमस्तिष्कीय मेरू द्रव से एक ऐसा पदार्थ पृथक करने का दावा किया जो प्राणियों में नींद पैदा करता है। उन्होंने इस पदार्थ को 'हिप्नोटॉक्सिन' नाम दिया।

उपरोक्त खोज उन वैज्ञानिकों के लिए अत्यंत उत्साहवर्धक साबित हुई जो निद्रा पदार्थों

की अवधारणा में विश्वास रखते थे। फलस्वरूप, अगले कई वर्षों तक वैज्ञानिक इन पदार्थों की खोज में जुटे रहे। वर्ष 1911 में इरेरा (Errera) नामक वैज्ञानिक ने एक नया विचार प्रकट किया। उनका कहना था कि संभवतया '' ल्यूकोमेन'' समूह के नशीले पदार्थों का तंत्रिका ऊतकों पर पड़ने वाला "अवनमनी प्रभाव'' नींद पैदा करता है। वर्ष 1923 में वैज्ञानिक काबिटो एल (Cabitto L) ने थकाने वाले "नशीले रसायनों'' के होने की बात कही। उनसे ठीक 10 वर्ष बाद 1933 में कॉर्नेल यूनिवर्सिटी, न्यूयॉर्क के वैज्ञानिक वाएल्डर ड्वाइट बैनक्राफ्ट (Wilder Dwight Bancroft, 1867-1953) तथा जे.ई.रुट्जलर (J E Rutzler) ने एक बिलकुल नया विचार प्रकट किया। उनका कहना था कि नींद चेतना के केन्द्रों में कुछ प्रोटीनों के प्रतिवर्ती संश्लेषण के कारण आती है। उन्होंने बताया कि इन प्रोटीनों का "एक्स'' समूह नींद पैदा करता है और "वाई'' समूह मनुष्य को नींद से जगाता है। इन्हीं वर्षों के दौरान कई जर्मन वैज्ञानिकों ने ब्रोमहॉरमोन जैसे रसायनों को नींद से जोड़ने का प्रयत्न किया किन्तु अपनी सारी कोशिशों के बावजूद ये सभी वैज्ञानिक ऐसे किसी रसायन की पुष्टि प्रयोगों द्वारा न कर पाए जिसे प्राणियों में नींद पैदा करने के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता था। वर्ष 1936 में क्लोएत्ता एम (Cloetta M) नामक वैज्ञानिक ने नींद को खून से ऊतकों में होने वाले कैल्सियम आयनों के स्थानान्तरण से जोड़ने का प्रयास किया। बहरहाल, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो के शरीरक्रिया वैज्ञानिक एन आर कूपरमैन (N- R- Cooperman) ने थोड़े दिनों बाद प्रयोगों द्वारा यह साबित कर दिया कि नींद का कैल्सियम आयनों के स्थानान्तरण से कोई संबंध नहीं है।

वैज्ञानिकों ने अपना शोध कार्य जारी रखा। वर्ष 1937 में डीन्स्ट सी (Dienst C) एवं विंटर बी (Winter B) ने नींद संबंधी अपना शोध कार्य प्रकाशित करवाया। उनके द्वारा किये शोध के अनुसार चयापचय की क्रियाओं के कारण शरीर के अम्लीय - क्षारीय संतुलन में परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन एक क्रांतिक स्तर पर पहुंचकर "आत्मग तंत्रिका तंत्र (ऑटोनोमिक नर्वस सिस्टम)" की क्रियाशीलता को कम करने लगता है। आत्मग तंत्रिका तंत्र की सक्रियता में कमी आने पर हमें नींद आने लगती है। तत्पश्चात, किसी महत्वपूर्ण निर्णय पर न पहुँच पाने के कारण वैज्ञानिकों की निद्रा पदार्थों की खोज में दिलचस्पी घटने लगी। लेकिन कुछ ही

समय बाद कुछ शरीरक्रिया विज्ञानियों ने यह घोषणा कर डाली कि "तंत्रिकीय अवमंदन (न्यूरल इनहिबिशन) "नींद पैदा करता है। इन वैज्ञानिकों का कहना था कि मस्तिष्क का कोई हिस्सा इन्द्रियों से पहुँचने वाले संकेतों को रोक कर नींद पैदा करता है। रूसी शरीरक्रिया वैज्ञानिक इवान पावलोव (1849-1936) का कहना था कि मस्तिष्क के सम्पूर्ण प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों से नींद की प्रक्रिया का संबंध है। यह प्रक्रिया सक्रिय होने पर मस्तिष्क में पहुँचने वाले और वहाँ से जाने वाले संवेगों को रोक देती है। पावलोव उन शरीरक्रिया वैज्ञानिकों से सहमत नहीं थे जो उन दिनों मस्तिष्क में नींद पैदा करने वाले विशिष्ट केंद्र अथवा केन्द्रों के होने की बात कह रहे थे।

बहरहाल, बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक के अंतिम वर्षों में मध्य - मस्तिष्क एवं पश्च मस्तिष्क में फैले "जागरण तंत्र" की खोज से अब तक चली आ रही इस संभावना को बल मिला कि मस्तिष्क में अन्य केन्द्रों की भांति निद्रा भी होने चाहियें। सन् 1930 में रोमानिया मूल के वैज्ञानिक कॉन्सटांटिन फ्रीहर वॉन इकोनामू (Constantin Freiherr von Economo, 1876-1931) ने अपने शोध पत्र में बताया कि 'नींद मस्तिष्क के एक निश्चित क्षेत्र से संचालित होती है। 'वर्ष 1939 में वैज्ञानिक स्टीवन वाल्टर रेन्सन (Steven Walter Ranson, 1880-1942) ने बंदरों पर किये अपने शोध कार्यों की चर्चा करते हुए बताया कि मस्तिष्क के अंदरूनी हिस्सों पार्श्व अधश्चेतक (हाइपोथैलेमस), स्तानाकर पिंडों चूचूकाभ थैलेमस पर किए धाव प्राणियों में नींद पैदा करते हैं। रेन्सन का कहना था कि मस्तिष्क के इन हिस्सों का प्राणी के सोने एवं जागने से अवश्य कोई संबंध होना चाहिए। वर्ष 1951 में वैज्ञानिक फ्रीड (Friede) ने कहा कि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि नींद और प्रमस्तिष्क - मेरू द्रव का आपस में संबंध है। उनका कहना था कि ऐसा कोई उद्दीपक पदार्थ अवश्य होना चाहिए जो जागरण के दौरान धीरे-धीरे प्रमस्तिष्क मेरू द्रव में मुक्त होता रहता है और एक स्तर विशेष पर पहुँचने पर नींद पैदा करता है। इसके बाद वर्ष 1956 में वैज्ञानिक पुरपुरा (PURPURA] D.P.) ने इस विचार का समर्थन किया कि किसी उद्दीपक पदार्थ का जमाव ही नींद के लिए उत्तरदायी है। इस दौरान मोनियर तथा हुसली ने खरगोशों पर नींद संबंधी कुछ प्रयोग किये। इन वैज्ञानिकों ने उद्दीपक पदार्थ होने वाले विचार का समर्थन तो

किया किन्तु इनका कहना था कि यह पदार्थ प्रमस्तिष्क - मेरू द्रव के बजाय संभवतया शिरा रक्त में जमा होता है। वर्ष 1957 में स्वीडिश शरीरक्रिया वैज्ञानिक डब्ल्यू आर हैश (Walter Rudolf Hess,1881-1973) ने नींद के विषय में कुछ महत्वपूर्ण बातें बताईं। उनका कहना था कि नींद का केंद्र चेतक (थैलमस) के आसपास है। अपने प्रयोगों की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि जब इस केंद्र को विद्युत तरंगों से उत्तेजित किया जाता है तो सजग प्राणी सोने लगता है।

हैश के बाद नींद के प्रक्रम को समझने में अनेक वैज्ञानिकों ने अपना योगदान दिया। प्राप्त आंकड़ों तथा उपलब्ध तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि न तो नींद का मस्तिष्क में कोई एक अकेला केंद्र है और न ही कोई एक अकेला निद्रा पदार्थ है। दरअसल, मस्तिष्क में आपस में एक दूसरे से जुड़े कई ऐसे केंद्र हैं जो नींद की प्रक्रिया का संचालन करते हैं। इनमें से कुछ का संबंध नींद के प्रतिदिन के समय तथा नींद शुरू होने की प्रक्रिया से है तो कुछ का संबंध स्वप्न रहित नींद और गहरी नींद से है। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि मस्तिष्क वृंत में स्थित तंत्रिका कोशिकाओं का एक समूह "जालक तंत्र" जागने की प्रक्रिया और अधश्चेतक में स्थित तंत्रिका कोशिकाओं का एक अन्य समूह ''राफे'' केन्द्रक नींद की प्रक्रिया का संचालन करता है। वर्ष 1963 में फ्रांस की यूनिवर्सिटी ऑफ लियों के प्रोफेसर मिशेल जुवै (Michel Jouvet,1925-2017) ने निद्रा संबंधी एक नया केंद्र ढूंढ निकाला। "नील स्थली'' नामक यह केंद्र पॉन्स में होता है और गहरी नींद यानी रैम स्लीप को नियंत्रित करता है।

बहरहाल, नींद के केन्द्रों का पता तो चल गया किन्तु उस समय तक वैज्ञानिक उस तथाकथित उद्दीपक पदार्थ के विषय में कुछ ठोस प्रमाण न जुटा पाए थे जो जागने के दौरान हमारे शरीर में एकत्रित होता रहता है और फिर एक क्रांतिक मात्रा में जमा होने के बाद निद्रा केन्द्रों को उत्तेजित कर प्राणी विशेष को सोने के लिए विवश करता है। वर्ष 1974 में हारवर्ड मेडिकल स्कूल के वैज्ञानिक जॉन रिचर्ड पपैनहाइमर (John Richard Pappenheimer, 1915-2007) एवं उनके सहयोगी जबरदस्ती जगाई हुई बकरियों के प्रमस्तिष्क - मेरू द्रव से एक ऐसे रसायन को प्राप्त करने में सफल हुए जो प्राणियों में नींद पैदा करता है। जब यह पदार्थ जागते हुए खरगोशों और चूहों के शरीर में इंजेक्ट किया गया तो वे तुरंत सो गए। उन्होंने उस समय तक अज्ञात इस रसायन का नाम "फैक्टर-एस'' रखा। तत्पश्चात, वर्ष 1980 के प्रारंभ में पपैनहाइमर की प्रयोगशाला में मनुष्यों के मूत्र से फैक्टर-एस को पृथक किया गया लेकिन तीन हजार लीटर मूत्र से कुल एक ग्राम के सत्तरवें लाख भाग के बराबर रसायन प्राप्त किया जा सका। यूं इतनी कम मात्रा भी प्राणियों में नींद पैदा करने के लिए ५०० खुराक बनाने के लिए पर्याप्त साबित हुई। जब यह खुराक खरगोशों को दी गई तो मात्र एक खुराक देने से खरगोशों की निद्रा अवधि में छह घंटों की वृद्धि हुई। नींद में हुई यह वृद्धि बिलकुल प्राकृतिक थी। कृत्रिम नींद की गोलियों के प्रभाव के विपरीत फैक्टर-एस की खुराक के कारण सोये जानवरों को आसानी से जगाया जा सका। यूं ऐसे खरगोश थोड़ी देर तक जागे रहने के बाद कुछ खाकर फिर सो जाते थे। तत्पश्चात, वाशिंगटन स्टेट यूनिवर्सिटी के तंत्रिका जीवविज्ञानी जेम्स एम क्रूगर (James M- Krueger) ने पपैनहाइमर के कार्य को आगे बढ़ाया। उन्होंने बताया कि फैक्टर - एस एक म्यूरैमिल पेप्टाइड है जो बैक्टीरिया की कोशिका - झिल्ली के घटकों से मिलता-जुलता है। इस तथ्य से वैज्ञानिकों ने पहले यह निष्कर्ष निकाला कि फैक्टर - एस संभवतया प्रमस्तिष्क मेरु द्रव एवं मूत्र को दूषित करने वाले जीवाणुओं का कोई उत्पाद है। बहरहाल, क्रूगर और उनके साथियों द्वारा किये शोध कार्य से ज्ञात हुआ कि यह पदार्थ शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र के प्रमुख घटक श्वेत रुधिर कणिकाओं द्वारा नष्ट किए गए एवं तत्पश्चात उत्सर्जित किए गए जीवाणुओं का उपचारित अवशेष हैं। इतना ही

नहीं, तत्पश्चात इन वैज्ञानिकों ने म्यूरैमिल पेप्टाइड संश्लेषित किया।

क्रूगर ने प्रयोगों द्वारा दिखाया कि म्यूरैमिल पेप्टाइड के एक अन्य रूपांतर म्यूरैमिल डाइ पेप्टाइड (एमडीपी) का जब चूहों, खरगोशों, बिल्लियों और बंदरों में अंतःक्षेपण (इंजेक्ट) किया गया तो इन प्राणियों की स्वप्न रहित नींद की अवधि बढ़ गई। प्रयोगों से यह भी ज्ञात हुआ कि अन्य दूसरे प्राकृतिक निद्रा पदार्थों की तरह म्यूरैमिल डाइ पेप्टाइड की क्षमता भी दिन के समय के अनुसार बदलती रहती है। साथ ही प्राणियों के शरीर में पहुँचने के बाद इनका निद्रा प्रभाव काफी देर बाद पड़ता है। यह प्रतिरक्षा तंत्र को उत्तेजित करता है और शारीरिक तापमान में वृद्धि करता है। क्रूगर के अनुसार एमडीपी "इण्टरल्यूकिन-1" रसायन को उत्तेजित कर नींद पैदा करता है। इण्टरल्यूकिन -1 को रक्त में बृहत्केन्द्रक श्वेताणुओं (मोनोसाइट) के द्वारा और मस्तिष्क में उसकी कोशिकाओं का पोषण एवं बचाव करने वाली कुछ कोशिकाओं के द्वारा बनाया जाता है। एमडीपी बृहत्केन्द्रक श्वेताणुओं को अधिक इण्टरल्यूकिन-1 बनाने के लिए उत्तेजित करता है। इण्टरल्यूकिन-1 एक "अंतर्जनित तापजनक (पाइरोजैन) है और ज्वर पैदा करने वाला प्राकृतिक शारीरिक रसायन है। क्रूगर और उनके साथियों ने प्रयोगों द्वारा यह भी साबित कर दिया कि शारीरिक तापमान में होने वाली वृद्धि को दवाओं द्वारा रोके जाने के बावजूद एमडीपी प्राणियों में नींद पैदा करता है और उसकी अवधि में वृद्धि करता है। वैसे भी इस तथ्य से हम परिचित हैं कि जिस दिन हम कठिन शारीरिक परिश्रम करते हैं, उसके बाद रात में हमें काफी गहरी नींद आती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि कठिन शारीरिक परिश्रम करने से शरीर में इण्टरल्यूकिन-1 के स्तर में वृद्धि होती है। क्रूगर के अनुसार इण्टरल्यूकिन-1 शरीर में प्रोस्टाग्लान्डिन डी-2 के स्राव को बढाता है और यह प्रोस्टाग्लान्डिन प्राणियों को सोने के लिए विवश करता है और नींद अवधि को बढ़ाता है। बहरहाल, बीसवीं सदी के आठवें दशक में वैज्ञानिकों ने कई दूसरे निद्रा पदार्थों को खोजने का दावा किया। "डेल्टा स्लीप इन्ड्यूसिंग पेप्टाइड" भी इनमें से एक था। पिछले तीन दशकों के दौरान किये शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि जागते रहने के दौरान प्रोस्टाग्लान्डिन डी-2 (पीजी डी-2) मस्तिष्क में एकत्रित होता रहता है। बीसवीं सदी के अंतिम

दशक से लेकर अब तक निहों याकुरीगाकु जास्सी (Nihon Yakurigaku Zasshi) और नागाता एन (Nagata N) सहित अनेक जापानी निद्रा वैज्ञानिक अपने अध्ययनों से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह पीजी डी-2 फिर डीपी 1 संग्राहकों (रिसेप्टर्स) को उत्तेजित कर कॉर्टेक्स एवं अग्रमस्तिष्क के बाह्यकोशीय प्रभाग में ऐडेनोसिन की सांद्रता को बढ़ाता है। यह ऐडेनोसिन फिर नींद संबंधी न्यूरोंस (तंत्रिकोशिकाओं) को सक्रिय कर नींद की अनुभूति को पैदा करता है। नींद के दौरान ऐडेनोसिन का अपधटन होता है। जब यह अपने पूर्व सामान्य स्तर पर आ जाता है तो प्राणी का जागरण तंत्र फिर से सक्रिय हो उठता है। यहां यह बताना भी उचित होगा कि हमारे नींद के प्रक्रम को हमारी जैविक घड़ी यानी "बायोलॉजिकल क्लॉक" और पर्यावरणीय कारक भी निर्धारित करते हैं। उदहारण के लिए हम इस तथ्य से परिचित हैं कि उजाले और अंधेरे से हमारी नींद का एक प्राकृतिक संबंध है। हमारी जैविक घड़ी हमारे मस्तिष्क में मौजूद कुछ ऐसी विशिष्ट कोशिकाओं का समूह है जो आंखों के माध्यम से पहुंचने वाले प्रकाश से सक्रिय होकर हमें सजग बनाये रखती है। अंधेरा होने पर यह जैविक घड़ी मेलाटोनिन हॉर्मोन की उत्पादन प्रक्रम को सक्रिय करती है। हम मनुष्यों में मेलाटोनिन हॉर्मोन का उत्पादन

मस्तिष्क के केंद्र में अवस्थित पीनियल ग्लैंड में होता है। यह हॉर्मोन हमारे अन्दर नींद की भावना को पैदा करता है। हमारे मस्तिष्क में शाम ढ़लने के बाद इस हॉर्मोन की मात्रा बढ़ने लगती है और रात के दूसरे पहर के दौरान इसकी मात्रा अधिकतम होती है। रात की पारी में कार्य करने वाले लोग यह अच्छी तरह से जानते हैं कि दिन में उस नींद को पूरा करना कितना अप्राकृतिक होता है। लंबी हवाई यात्राओं के दौरान भी लोगों को नींद और जागरण के बीच होने वाली गड़बड़ियों का सामना करना पड़ता है। नींद से जुड़ी ऐसे समस्याओं के समाधान लिए चिकित्सक यदाकदा मेलाटोनिन संपूरकों का उपयोग भी करते हैं।

सन् 2013 में डैनिश मूल की चिकित्सक माइकिन निजिओग्यार्ड (Maiken Nedergaard) और उनके सहयोगियों ने यूनिवर्सिटी ऑफ रॉचेस्टर मेडिकल सेंटर, न्यूयॉर्क में नींद संबंधी अपने शोध से मस्तिष्क में एक ऐसे तंत्र की खोज की है जो नींद के दौरान मस्तिष्क से उस विषालु प्रोटीन बीटा - अमिल्वाइड को हटाने में मदद करता है जो जागरण के दौरान मस्तिष्क ऊतकों में जमा होता रहता है। इस तंत्र को उन्होंने 'ग्लाइमफैटिक सिस्टम' नाम दिया है। इस तंत्र का प्रबंधन मस्तिष्क की 'ग्लीअल कोशिकाएं' करती हैं। कुछ दूसरे अनुसंधानकर्ताओं ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि नींद के दौरान मस्तिष्क में बीटा - अमिल्वाइड के स्तर में कमी आती है। उल्लेखनीय है कि अल्जायमर के रोगियों के मस्तिष्क में यह प्रोटीन जमा होती रहती है। सन् 1957 में जन्मी माइकिन निजिओग्यार्ड आजकल डेनमार्क की यूनिवर्सिटी ऑफ कोपेनहेगेन के सेंटर ऑफ बेसिक एंड ट्रांसलेशनल न्यूरोसाइंस में प्रोफेसर हैं और अपने इस शोध में जुटी हैं। कुल मिलाकर, अभी भी दुनिया के विभिन्न देशों के वैज्ञानिक निद्रा से जुड़े सवालों का जवाब खोजने में व्यस्त हैं। सम्प्रति निद्रा वैज्ञानिक मनुष्य विशेष की जीन (वंशाणुओं) और नींद के परस्पर संबंधों पर शोध करने में जुटे हैं। नींद प्राणियों के लिए बेहद जरूरी है और इससे जुड़े सवालों के स्पष्ट जवाब हमें नींद से जुड़ी अनेक बीमारियों के ठोस उपचार में मदद कर सकते हैं।

subhash.surendra@gmail.com

परमाणु हमला बचेगा कौन ?

विजन कुमार पांडेय

विजन कुमार पाण्डेय लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं और शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं। उन्होंने विगत तीन दशकों में तीन सौ से अधिक लेख लिखे हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में वे नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं की कई-कई पाठक हैं जो आपके काम को रेखांकित करते रहते हैं।

अमेरिका के पास ऐसे परमाणु हथियार हैं जो धरती को बुरीतरह तबाह कर सकते हैं।उसकेपास हथियारों का ज़खीरा ब्रिटेन के मुकाबले 31 गुना और चीन के मुकाबले 26 गुना बड़ा है।वह्शिंगटन स्थित संस्था आर्म्सकंट्रोल एसोसिएशन की ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार केवल रूस ही है जो परमाणु शक्ति के मामले में फिलहाल अमेरिका से आगे है।अमेरिका के पास कुल 6,800 परमाणु हथियार हैं जबकि रूस के पास 7,000 ऐसे हथियार हैं।अमेरिका और रूस ही दो ऐसे देश है जिनके पास परमाणु हमले के लिए ज़रूरत से ज़्यादा हथियार हैं। दोनों के पास दुनिया में मौजूद कुल 15,000 ऐसे हथियारों का 90 फीसदी है। इस लिस्ट में 300 हथियारों के साथ फ्रांस तीसरे नंबर पर है। पूर्व में ऐसे हथियार केवल प्रतिरोधक उपायों के तौर पर देखे जाते थे। लेकिन सबसे खतरनाक बात ऐसे हथियारों की सामग्री की बढ़ती खोज है जिससे परमाणु युद्ध का नया खतरा सामने आ गया है। इसके कारणऐसे हथियारों की संख्या में तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। पाकिस्तान हमेशा भारत को परमाणु युद्ध के लिए उकसाता रहा है। इसके लिए दोनों देशकम से कम पांच बार परमाणु युद्ध के कगार पर पहुंच चुके थे। वर्ष 1987 में, वर्ष 1990 में, करगिल युद्ध (वर्ष 1999) के दौरान, वर्ष 2001 में भारतीय संसद पर हमले के बाद और वर्ष 2008 में मुंबई हमलों के बाद दोनों देश परमाणु युद्ध के बिल्कुल करीब थे। परमाणु युग में भारत की शुरुआत 1974 में हुई जिसके बाद पाकिस्तान ने इसमें प्रवेश किया।वर्ष 1998 में परमाणु परीक्षणों के बाद एक तरह से परमाणु शस्त्रों की दोनों देशों में होड़ शुरू हो गई जो अब एक खतरनाक दौर से गुजर रही है।

युद्ध जैसा माहौल

इस समय भारत-पाक के बीच तनाव अपने चरम पर है। विभिन्न टीवी चैनल्स, वेबसाइट्स और सोशल मीडिया देश के लिए मरने-मारने के लिए उबल रहे हैं। फेसबुक, ट्विटर सहित कई प्रतिष्ठित वेबसाइटों पर इस मुद्दे पर बहस जोरो पर है। जनता का मानना है कि चाहे परमाणु युद्ध ही क्यों न जाए लेकिन इस बार आर-पार की लड़ाई हो ही जाए। रक्षा विशेषज्ञों द्वारा भी आशंका जताई जा रही है कि यदि भारत पाकिस्तान पर कोई कठोर सैनिक कार्यवाई करता है तो यह पूर्णकालिक युद्ध का रूप ले सकती है। इसका अंत एक भयानक परमाणु युद्ध हो सकता है। आज के जमाने में परमाणु युद्ध की क्या कीमत चुकानी पड़ सकती है इसका अंदाज लगाना बहुत मुश्किल है। इस समय दोनों देशों के बीच काफी तनाव है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि युद्ध होगा ही। अगर गलती से भी ऐसा होता है तो इसका परिणाम बहुत भयानक होगा। यदि दोनों देश परमाणु युद्ध में गलती से भी कूद गए तो तबाही का मंजर कितना भयानक होगा शायद इसका अंदाजा किसी को नहीं है। एक ही हप्ते में दो करोड़ दस लाख से ज्यादा लोग मर जाएंगे। इनमें से 50 लाख से ज्यादा लोग बम की तपिश से झुलस जाएंगे। आधी दुनिया के दो अरब से ज्यादा लोग सिर्फ भूख से मर

जाएंगे, जो बचेंगे उन्हें रेडिएशन मार देगा। दुनिया से अधिकांश पेड़ पौधों और वनस्पतियों का नामों निशान मिट जाएगा। ओजोन की आधी परत खत्म हो जाएगी। दुनिया से सर्दी गर्मी का मौसम ही खत्म हो जाएगा। सभीको सर्दी तबाह कर देगी। बात सिर्फ हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की नहीं, दाव पर आधी दुनिया होगी। जी हां, अगर गलती से ही हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच जंग हो गई, और आधे परमाणु बम की बटन ही दबा दें गई तो एक झटके में दो करोड़ से ज्यादा लोग मर जाएंगे। मगर इसका असर न केवल भारत और पाकिस्तान को बल्कि आधी दुनिया को झेलना पड़ेगा। भारत और पाकिस्तान के पास जो बम हैं वे बम हिरोशिमा में गिराए गए बम के बराबर है। ये बम जैसे ही गिरेंगे सबसे पहले इसकी गर्मी, तपिस और रेडिएशन लोगों को मारेगी। इसके बाद जो बच जाएंगे उनके लिए भी जीना आसान नहीं होगा। भोपाल गैस कांड के तीस साल बाद तीसरी पीढ़ी के लोग बीमार पैदा हो रहे हैं। वो तो गैस थी, ये तो परमाणु बम है। अंदाजा लगाइए इसका असर कितना लंबा और खतरनाक होगा। बमों का रेडिएशन लोगों को सिर्फ तड़पाएगा ही नहीं बल्कि उनको तिल तिल कर मारेगा। इसके तपिस से हवा खत्म हो जाएगी जो मौसम को बदलदेगा। इससे मौसम पर भी बुरा असर होगा और अनुमान है कि इतनी ठंडी बढ़ेगी कि लोग अकड़ कर मर जाएंगे। दुनिया से सर्दी गर्मी का मौसम ही खत्म हो जाएगा।

परमाणु युद्ध की सूरत में 2 करोड़ 10 लाख लोगों की मौत तो पहले ही हफ्ते में हो जाएगी। यह दूसरे विश्व युद्ध में मारे गए लोगों की तादाद के मुकाबले आधी है। इतना ही नहीं मौत का ये आंकड़ा हिंदुस्तान में पिछले 9 सालों में आतंकवादी हमलों में मारे गए आम लोगों, पुलिस, जवान और सुरक्षा बलों की कुल तादाद से 2 हज़ार 221 गुना ज़्यादा होगी। इसका अर्थ है कि इस वक्त आतंकवादी हमले से जितने लोग मरे हैं, परमाणु युद्ध उससे 2 हज़ार गुना ज़्यादा इंसानों की जान ले लेगा। ऐसे में दुनिया के एक बड़े इलाक़े से पेड़-पौधों और वनस्पतियों का नामो-निशान तक मिट जाएगा। सिर्फ़ इसी वजह से लगभग 2 अरब लोग भूख से मारे जाएंगे। ये आंकड़े 2013 में भौतिक

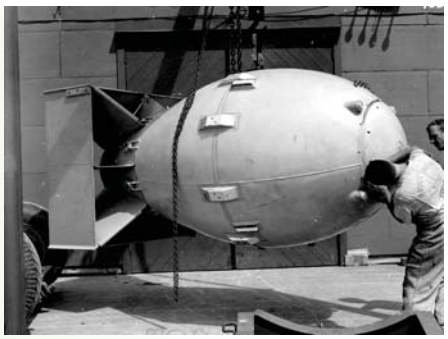

वैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन ने परमाणु युद्ध रोकने के लिए किए गए एक अध्ययन के बाद जारी किए गए थे। पिछले कुछ दिनों से पाकिस्तान की ओर से लगातार भड़काऊ बयानबाजी की जा रही है। पाकिस्तान खुले आम परमाणु बम से हमला करने की धमकी देता है और अपनी पीठ खुद ही ठोकता रहता है। यह परमाणु संपन्न राष्ट्र है ऐसे में भारत को ध्यान रखना होगा कि उकसावे की कार्रवाई में अपना नुकसान न हो जाए, क्योंकि पाकिस्तान की छवि पूरी दुनिया में आतंकियों को पालने वाले देश के रूप में होती है और पाकिस्तान से निकला आतंक पूरी दुनिया को कई बार दहला चुका है। इसमें भारत ही नहीं अमेरिका तक झुलस चुके हैं।दूसरी तरफ भारत की ओर से चलाए जा रहे मिसाइल परीक्षण कार्यक्रम से पाकिस्तान बौखला गया है। उसने इस बात को इंटरनेशनल फोरम तक ले गया है। पाकिस्तान का कहना है कि इससे संपूर्ण दक्षिण एशिया में तनाव बढ़ेगा। ऐसे में अगर युद्ध हुआ तो यह किसी के लिए बेहतर नहीं होगा। इससे तनाव दक्षिण एशिया खासकर भारत-पाकिस्तान के बीच तो और बढ़ेगा ही साथ ही इस तनाव से पूरी दुनिया प्रभावित होगी। एक तरफ परमाणु बम का खतरा तो दूसरी तरफ मिसाइल हमले की आहट से पूरी दुनिया परेशान है। ऐसा नहीं कि केवल भारत ही मिसाइल परीक्षण कर रहा है। पाकिस्तान भी लगातार अपने मिसाइल

परीक्षण को धार दे रहा है। भारत अगर अग्नि, त्रिशूल, नाग, पृथ्वी नाम से मिसाइलों का परीक्षण कर रहा है तो पाकिस्तान भी गौरी, शाहीन और अन्य नामों से अपनी मिसाइलों का परीक्षण कर रहा है। अगर वर्तमान स्थिति को देखें तो इन मामलों में भारत पाकिस्तान से काफी आगे है और भारत ने काफी कुछ अपने दम पर विकसित कर लिया है, वहीं पाकिस्तान को अभी भी दूसरे देशों की तकनीकी पर निर्भर रहना पड़ रहा है। बस यही अहम अंतर है, जो भारत को पाकिस्तान से आगे रख रहा है।

क्या परमाणु हमला झेलने के लिए तैयार हैं हम

आज बहुत से आतंकी संगठन भी परमाणु हथियार हासिल करने की फ़िराक़ में हैं। वैसे तो ये बहुत मुश्किल है कि कोई परमाणु हमला करे, मगर ऐसा हो ही जाए तो क्या होगा? क्या हम परमाणु हमला झेलने के लिए तैयार हैं? दुनिया ने एटम बम से होने वाली तबाही हिरोशिमा और नागासाकी में देखी है। साथ ही इंसानियत चेरनोबिल जैसे हादसों की भी गवाह बनी है। गुज़रे वक़्त के साथ, इस हादसे की यादें इतिहास के पन्नों में दबती जा रही हैं। लेकिन इससे मिले ज़ख़्म आज भी रिस रहे हैं। आज भी वहां के लोग पूरी तरह सेहतमंद नहीं हैं। इसी तरह हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराए गए एटम बम का असर आज की नस्लें भी झेल रही हैं। इसीलिए ज़रूरी है कि हम ये देखें कि दुनिया परमाणु हमला झेलने के लिए कितनी तैयार है। ब्रिटेन में पिंडार नाम से एक सुरक्षित बंकर बना हुआ है, जहां किसी परमाणु हमले की सूरत में सेना और सरकार के अधिकारी अपनी जान बचा सकेंगें। परमाणु जंग के बाद मची तबाही के वक़्त भी यहां से तमाम सरकारी काम चलते रहेंगे। यहां का सरकारी वर्ग और सैनिक सुरक्षित रहेंगे। लेकिन अगर भारत पाक जंग हुआ तो आम जनता को सुरक्षित कैसे रखा जाए इसकी भी तैयारी होनी चाहिए। इसके लिए सरकार की क्या तैयारी है? इस पर विचार करने की जरूरत है। इसकी ज़रूरत इसलिए है क्योंकि आज भी दुनिया में क़रीब पंद्रह हज़ार परमाणु हथियार हैं। रूस और अमरीका के पास इनका सबसे बड़ा ज़ख़ीरा है। हालांकि इस बात की संभावना कम ही है कि इन हथियारों का इस्तेमाल होगा। लेकिन इस बात को भी

नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि आज आतंकियों का नेटवर्क बहुत मज़बूत हो गया है। उनके पास एक से एक ख़तरनाक हथियार हैं। लिहाज़ा नागरिकों की सुरक्षा का पूरा इंतज़ाम होना ही चाहिए क्योंकि तमाम देश, सिर्फ़ बड़े नेताओं और सैन्य अफ़सरों को जंग के दौरान बचाने की तैयारी करते हैं। आम लोगों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है। सबसे बुनियादी बाततो यह है कि परमाणु हमले के समय लोग घरों के अंदर ही रहें। लेकिन परमाणु हमले की सूरत में सारा माहौल ही उसकी चपेट में आ जाता है। फिर चाहे कोई घर के अंदर रहे या बाहर असर तो होगा ही। हां इतना ज़रूर है कि अगर आप खुद को बिल्डिंग के अंदर लंबे वक़्त के लिए क़ैद कर लेते हैं तो रेडिएशन के भारी असर से खुद को बचा सकते हैं। परमाणु हमले से बचना आज के दौर में सभी के लिए बहुत बड़ी चुनौती है।

परमाणु हमले का शिकार नागासाकी कैसे हुआ

हिरोशिमा के लोगों के लिए वह सुबह हर सुबह जैसी ही थी। लोग अपने रोज़मर्रा के कामों को निपटा रहे थे। वे इस बात से अंजान थे कि वहाँ सब कुछ चंदपलों में ही ख़त्म होने वाला है। इतिहास तो लिखा जाना अभी भी बाक़ी था, लेकिन इसकी इबारत तैयार थी। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन एक बेहद गोपनीय अभियान में जापान पर परमाणु बम गिराए जाने को मंजूरी दे चुके थे। तड़के सुबह के 2 बजकर 45 मिनट पर अमेरिकी वायुसेना के बमवर्षक बी-29 'एनोला गे' ने उड़ान भरी और उसका एक ही लक्ष्य था जापान को तबाह करना।हिरोशिमा के लिए जो बम रवाना किया गया उसे पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति रुज़वेल्ट के सन्दर्भ में 'लिटिलबहृय' के नाम से भी जाना जाता है। मॉरिस जैप्सनवो व्यक्ति थे जिनके हाथ में आख़िरी बार 'लिटिलबॉय' था। उन्होंने अपने चालक सहयोगी डीकपार्सन के साथ मिल कर चार बड़े बैग बारूद इस बम में रख दिए। इसके बाद जैप्सन ने लिटिलबॉय में प्लग लगा कर इसे ज़िंदा बम में तब्दील कर दिया।

छह अगस्त, 1945 को जापान के हिरोशिमा पर पहला परमाणु बम गिराया गया। इस बम के धमाके से हिरोशिमा में 13 वर्ग किलोमीटर केदायरे में तबाही मच गई।हज़ारों

लोगों की मौत एक झटके में हो गई। इससे होने वाली नुकसान का जब तक पूरा अंदाज़ा लगाया जाता, उससे पहले ही जापान के एक दूसरे शहर नागासाकी पर भी अमेरिका ने परमाणु बम गिरादिया। नागासाकी पर नौ अगस्त, 1945 को परमाणु बम गिराया गया जबकि इस शहर पर परमाणु हमला तय नहीं था।यहशहर निशाना क्यों बन गया इसका कारण कुछ लोगों को नहीं मालूम। दरअसल आठ अगस्त, 1945 की रात बीत चुकी थी, अमेरिका के बमवर्षक बी-29 सुपरफोर्ट्रेस बॉक्स पर एक बम लदा हुआ था। यह बम एक भीमकाय तरबूज़ की तरह था। इसका वज़न 4050 किलो था। बम का नाम विंस्टन चर्चिल के सन्दर्भ में 'फ़ैटमैन' रखा गयाथा। इस बम के निशाने पर था औद्योगिक नगर कोकुरा। यहाँ जापान की सबसे बड़ी और सबसे ज़्यादा गोला-बारूद बनाने वाली फैक्टरियाँ थीं।सुबह नौ बजकर पचास मिनट पर नीचे कोकुरा नगर नज़र आने लगा। इस समय बी-29 विमान 31,000 फीट की ऊँचाई पर उड़ रहा था।बम इसी ऊँचाई से गिराया जाना था। लेकिन नगर के ऊपरधने बादलथे। इसलिए बी-29 फिर से धूम कर कोकुरा पर आ गया।लेकिन जब शहर पर बम गिराने की बारी आई तो फिर से शहर पर धुंए का क़ब्ज़ा था और नीचे से विमान-भेदी तोपें आग उगल रहीं थीं।

इधर बी-29 का ईंधन ख़तरनाक तरीक़े से घटता जा रहा था। विमान में सिर्फ़ इतना ही ईंधन बचा था कि वापस पहुंच सकें।इसलिएचालक दल ने बम गिराने वाले स्वचालित उपकरण को चालू कर दिया और कुछ ही क्षण बाद भीमकाय बम तेज़ी से धरती की ओर बढ़ने लगा। 52 सेकेण्ड तक नीचे गिरते रहने के बाद बम पृथ्वी तल से 500 फ़ुट की उँचाई पर फट गया। उस समय दिन के 11 बज रहे थे। इसके फटने से आग का एक भीमकाय गोला मशरुम की शक्ल में उठा। गोले का आकार लगातार बढ़ने लगा और तेज़ी से सारे शहर को निगलने लगा। नागासाकी के समुद्र तट पर तैरती नौकाओं और बन्दरगाह में खड़ी तमाम नौकाओं में आग लग गई। आस पास के दायरे में मौजूद कोई भी व्यक्ति यह जान ही नहीं पाया कि आख़िर हुआ क्या क्योंकि वो इसका आभास होने से पहले ही मर चुके थे। चूंकि नागासाकी शहर के पहाड़ों से घिरा था इसलिए केवल 6.7 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ही तबाही हुई। बाद में पता चला कि हिरोशिमा में एक लाख 40 हज़ार लोगों की मौत हुई थी।जबकि नागासाकी में हुए धमाके में क़रीब 74 हज़ार लोगों की मौत हुई।

अगस्त, 1945 को हिरोशिमा पर यूरेनियम वाला पहला परमाणु बम गिरा कर ट्रूमैन ने जता दिया कि वे जापान का कैसा विध्वंस चाहते हैं। सुबह आठ बज कर 16 मिनट पर ज़मीन से 600 मीटर ऊपर बम फूटा और 43 सेकंड के भीतर शहर के केंद्रीय हिस्से का 80 फीसदी नेस्तनाबूद हो गया। 10 लाख सेल्शियस तापमान वाला आग का एक गोला तेज़ी से फैला, जिसने 10 किलोमीटर के दायरे में आई हर चीज को राख कर दिया। शहर के 76,000 धरों में से 70,000 तहस-नहस या क्षतिग्रस्त हो गए। 70,000 से 80,000 लोग तुरंत मर गए। इससे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि अब अगर परमाणु युद्ध हुआ तो दुनिया किस तरह तबाह हो जाएगी। मानव जाति का नामों-निशान ही खत्म हो जाएगा। इसलिए ऐसे घातक बम और हथियारों का निर्माण तुरंत बंद होना चाहिए।

vijankumarpandey@gmail.com

ऊर्जा समस्या
वैकल्पिक स्रोत जरूरी

डॉ.दिनेश मणि

ऊर्जा, किसी भी राष्ट्र के विकास का प्रमुख मापदंड है। वर्तमान युग में प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग विकास का सूचक बन चुका है। विकसित और औद्योगिक देशों में प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग विकासशील देशों की तुलना में अधिक है । चूँकि ऊर्जा उपभोग तथा आर्थिक वृद्धि दर में घनिष्ठ संबंध है इसलिए कम ऊर्जा उपभोग वाले देश आर्थिक विकास में भी निम्न स्तर पर हैं और विकासशील देश कहलाते हैं। विकासशील देशों- यथा भारत, पाकिस्तान, थाइलैण्ड, बंगलादेश में ऊर्जा के उपभोग में वृद्धि होना अपने आप में चिंता का विषय है। यदि हमें विकासशील देशों को आर्थिक प्रगति की राह पर ले जाना हैं, तो ऊर्जा क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनना होगा। ऊर्जा क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने के लिए हमें पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के अतिरिक्त गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के विकास पर ध्यान देना होगा।

गैर-पारंपरिक ऊर्जा के विविध स्रोतों यथा- सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा,बायोमास ऊर्जा, जैविक ऊर्जा, सागरीय ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा, जल ऊर्जा, पशु ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा के अतिरिक्त ऊर्जा के नए विकल्प के रूप में हाइड्रोजन तथा गैस हाइड्रेट शामिल है। हमारे देश में गैर-पारंपरिक ऊर्जा की अपार संभावनाएं है। देश की निर्धनता दूर करने तथा पर्याप्त संख्या में रोजगार उत्पन्न करने में हमें ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने की दिशा में आवश्यक कदम उठाने होंगे। इस सन्दर्भ में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, बायोमास ऊर्जा, सागरीय ऊर्जा, नाभिकीय उर्जा, भू तापीय उर्जा, जलीय ऊर्जा पर उल्लेखनीय कार्य हो चुका है। हाल के वर्षों में प्राकृतिक गैस हाइड्रेट को भविष्य के गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोत के रूप में पहचाना गया है। इस विशाल उर्जा स्रोत को उपयोग में लाने के लिए भारत में ही नहीं। अपितु पूरे विश्व में अनुसंधान कार्य हो रहे हैं ।

हमारे देश में पेट्रोलियम अनुसंधान संस्थान देहरादून में 1996-97 से गैस हाइड्रेट पर अध्ययन चल रहा है ।भारत में गैस हाइड्रेटों की खोज का कार्य गहरे पानी वाले महाद्वीपीय ढलवां क्षेत्रों में चल रहा है जहॉ उच्च दाब तथा निम्न ताप की संतोषजनक स्थितियां हैं। अभी तक अंडमान तथा कृष्णा गोदावरी अपतटीय क्षेत्रों की पहचान गैस हाइड्रेट अन्तर्भूत विभव वाले क्षेत्र के रूप में की जा चुकी है। भारत सरकार ने 1997 में राष्ट्रीय गैस हाइड्रेट कार्यक्रम प्रारंभ किया है जिसमें सरकारी क्षेत्र की बड़ी बड़ी तेल कम्पनियां तथा अन्य संस्थानों जैसे राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान गोवा एवं राष्ट्रीय भूभौतिकीय अनुसंधान संस्थान हैदराबाद के प्रतिनिधि सम्मिलित है।

प्राकृतिक गैस हाइड्रेट बर्फ के समान यौगिक हैं। इनमें गैस तथा जल के अणु भौतिक रूप से परस्पर जुड़े रहते हैं। गैस की उपस्थिति, उच्च दाब तथा निम्न ताप की अवस्थाओं में क्रिस्टल जालक बनते हैं जिनमें मीथेन गैस निहित रहती है। गैस हाइड्रेट में ठोस जल के जालक अपने अन्दर गैस अणुओं को एक प्रकार के पिंजर-जैसे ढॉचे में कैद रखते हैं। अनुमान है कि एक घनमीटर गैस हाइड्रेट से विघटन के पश्चात् मानक ताप और दाब पर 164 घनमीटर गैस और 0.8 घनमीटर जल मुक्त होता है।

प्राकृतिक गैस हाइड्रेट उत्तरी ध्रुव के परमाफास्ट क्षेत्र और समुद्र के नीचे, महाद्वीप के बाहरी किनारों पर पाये जाते हैं । महाद्वीप के किनारों पर, अपतट में लगभग 700 मीटर की गहराई पर जहॉ उच्च दाब तथा निम्न ताप होता है, वहॉ गैस हाइड्रेट पाए जाते हैं। ऐसे क्षेत्र हाइड्रेट स्थिरता

डॉ. दिनेश मणि विगत तीन दशक से विज्ञान लेखन कर रहे हैं। विज्ञान के लोकप्रियकरण में उनका उल्लेखनीय योगदान है। अब तक आपकी हिन्दी में 28 और अंग्रेजी में 6 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 35 शोध पत्र और लगभग 700 विज्ञान आलेख प्रकाशित हुए हैं। आपके निर्देशन में 12 शोध छात्रों को डॉक्टरेट की उपाधि मिल चुकी है। विज्ञान की महत्वपूर्ण मासिक पत्रिका 'विज्ञान' के संपादक रहे दिनेश मणि इलाहाबाद में रहते हैं।

क्षेत्र कहलाते हैं, परमाफॉस्ट क्षेत्र में तथा महाद्वीपीय ढलवे भूमि से निकाले गए अवसादों के नमूनों में गैस हाइड्रेट पाए गए हैं। गैस हाइड्रेट की खोज में भूकंपीय तरंग आंकड़ा का अध्ययन विधि उपयोगी है। राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान हाइड्रेट से सम्बन्धित स्वाथ, अनुगंभीर, पार्श्वस्कैन सोनार प्रतिबिम्ब और चिर्प सोनार आंकड़े एकत्र किए जा चुके हैं। महत्वपूर्ण स्थानों से अवसादों और पानी के नमूने भी एकत्र किए जा चुके हैं। अध्ययन के फलस्वरूप कृष्णा गोदावरी अपतटीय क्षेत्र में 15 स्थानों को सुनिश्चित किया जा चुका है जहॉ वेधन, लॉगिंग और क्रोडिंग का कार्य किया जाना है। कुछ स्थान अंडमान पश्चिम अपतट में भी सुनिश्चित किये गये हैं।

हाइड्रोजन को भी ऊर्जा का अच्छा एवं स्वच्छ स्रोत माना जा रहा है । जल से असीमित मात्रा में हाइड्रोजन निर्मित की जा सकती है। हाइड्रोजन के जलने से पुनः जल बन जाता है इसलिए इसके स्रोत समाप्त होने की आशंका नहीं है । इस तरह हाइड्रोजन पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत सिद्ध हो सकता है। ईधन के रूप में इसके इकाई की दहन ऊर्जा किसी अन्य ईंधन की अपेक्षा बहुत अधिक है जो हाइड्रोजन के पक्ष में है। मोटर गाड़ियों में भी इसका प्रयोग सरल है क्योंकि गैसोलीन की अपेक्षा इसकी शक्ति संभावना ढाई गुनी है। हाइड्रोजन द्वारा कारें चलाने के प्रयोग सफल रहे हैं।

हाइड्रोजन का उपयोग ईंधन के रूप में किया जा सकता है क्योंकि यह रंगहीन स्वच्छ ज्वाला के साथ जलती है। प्राकृतिक गैस के स्थान पर हाइड्रोजन का उपयोग औद्योगिक भट्टी, रसोईघर तथा अन्य उपकरणों में बर्नर में थोड़ा सुधार करके किया जा सकता है। हाइड्रोजन एक अद्वितीय ईंधन है क्योंकि इसमें से धुंआ नहीं निकलता। अतः चिमनी की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे चालीस प्रतिशत ईंधन की बचत हो जाती है। हाइड्रोजन को ऑक्सीकरण के साथ ईंधन सेल में भी संयुक्त किया जा सकता है जो सीधे विद्युत उत्पन्न कर सके। इस सेल की सम्परिवर्तन क्षमता 60 प्रतिशत होगी। यह विद्युत उत्पादन तथा वितरण प्रणाली के लिए अच्छा होगा। हाइड्रोजन आसानी से भूमिगत पाइपों द्वारा दूर-दूर तक ले जाई जा सकती है । इसके जलने से जल बनता है अतः हाइड्रोजन के उपयोग से प्रदूषण का भी खतरा नहीं होता। हाइड्रोजन को विभिन्न भौतिक अवस्थाओं में रखा जा सकता है। साधारण दाब पर गैस रूप में, विद्युत उष्मा अवरोधी पात्रों में, द्रव रूप में तथा धात्विक हाइड्राइडों के रूप में ठोस अवस्था में रखा जा सकता है।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों में से कई गुना अधिक शक्तिशाली परन्तु कम प्रचलित ऊर्जा स्रोत है- परमाणु ऊर्जा या नाभिकीय ऊर्जा। ऊर्जा के इस स्रोत का दुरूपयोग एक ओर समग्रसृष्टि के विध्वंस के लिए किया जा सकता है तो दूसरी ओर इसके षान्तिपूर्ण उपयोगों से सम्पूर्ण प्राणिजगत का कल्याण किया जा सकता है।

वस्तुतः परमाणुओं के नाभिकों में ऊर्जा का बहुत बड़ा खजाना छुपा हुआ है । इसे नाभिकीय ऊर्जा कहा जाता है। किसी भी परमाणु का द्रव्यमान उसमें निहित प्रोटॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रानों के संयुक्त द्रव्यमान से कम होता है। द्रव्यमान के इस अन्तर को द्रव्यमान क्षति कहते हैं। आइंस्टाइन के अनुसार यह द्रव्यमान क्षति ऊर्जा में बदल जाती है। इसी ऊर्जा को नाभिक की बन्धन ऊर्जा कहते हैं। यही ऊर्जा नाभिक के अन्दर उपस्थित सभी न्यूक्लिऑनों को परस्पर बॉधे रहती है।

ऐसा माना जा रहा है कि भविष्य में विद्युत उत्पादन का अधिकांश भाग नाभिकीय ऊर्जा के माध्यम से ही करना पड़ेगा। यद्यपि कई तरीकों से नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए किया जा सकता है जैसे विखंडन प्रक्रिया, संलयन प्रक्रिया,त्वरित द्वारा चालित उप-क्रांतिक रिएक्टर आदि, परन्तु इसमें सबसे विकसित तकनीक है-विखंडन प्रक्रिया द्वारा परमाणु रिएक्टर में उत्पन्न ऊर्जा का विद्युत में परिवर्तन। अन्य पद्धतियों का विकास भी हो रहा है और संभवतः निकट भविष्य में इन तकनीकों के माध्यम से भी नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए प्रारम्भ हो जाएगा।

विकसित देशों में परमाणु रिएक्टरों से काफी मात्रा में विद्युत का उत्पादन हो रहा है। वर्तमान में पॉच ऐसे देश हैं जहॉ कुल उत्पादित विद्युत का पचास प्रतिशत से भी अधिक भाग परमाणु रिएक्टरों से प्राप्त होता है। विकासशील

हाइड्रोजन का उपयोग ईंधन के रूप में किया जा सकता है क्योंकि यह रंगहीन स्वच्छ ज्वाला के साथ जलती है। प्राकृतिक गैस के स्थान पर हाइड्रोजन का उपयोग औद्योगिक भट्टी, रसोईघर तथा अन्य उपकरणों में बर्नर में थोड़ा सुधार करके किया जा सकता है। हाइड्रोजन एक अद्वितीय ईंधन है क्योंकि इसमें से धुंआ नहीं निकलता। अतः चिमनी की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे चालीस प्रतिशत ईंधन की बचत हो जाती है। हाइड्रोजन को ऑक्सीकरण के साथ ईंधन सेल में भी संयुक्त किया जा सकता है जो सीधे विद्युत उत्पन्न कर सके। इस सेल की सम्परिवर्तन क्षमता 60 प्रतिशत होगी। यह विद्युत उत्पादन तथा वितरण प्रणाली के लिए अच्छा होगा। हाइड्रोजन आसानी से भूमिगत पाइपों द्वारा दूर-दूर तक ले जाई जा सकती है । इसके जलने से जल बनता है अतः हाइड्रोजन के उपयोग से प्रदूषण का भी खतरा नहीं होता।

देशों में लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिए वहाँ विद्युत उत्पादन में भारी वृद्धि करने की आवष्यकता है। विद्युत की मांग जिस तेजी से बढ़ रही है उससे स्पष्ट है कि निकट भविष्य में दूसरे किसी स्रोत पर नजर डालनी होगी। नाभिकीय ऊर्जा पर गौर करने से हम पाते हैं कि चूँकि विश्व में पर्याप्त मात्रा में यूरेनियम एवं थोरियम उपलब्ध है, उचित तरीके से इनका इस्तेमाल करने से अगले हजार वर्षों तक ऊर्जा स्रोतों के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं होगी ।

भारत में लगभग 78ए000 टन यूरेनियम एवं 518000 टन थोरियम भंडार उपलब्ध हैं । प्राकृतिक यूरेनियम में वृहद अंश (99.3%) यूरेनियम-238 परमाणुओं का होता है । इन दो परमाणु ईंधनों का संपूर्ण उपयोग सीधा यानि प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता । इन्हें ईंधन के तौर पर इस्तेमाल करने से पहले क्रमशः प्लूटोनियम-239 एवं यूरेनियम-233 में परिवर्तित करना पड़ता है। ऐसा करने पर ही भारत में संभावित परमाणु ऊर्जा जो 2062 बिलियन टन (2 लाख करोड़ टन) कोयला के तुल्यमान ऊर्जा के बराबर है, का सम्पूर्ण उपयोग हो पायेगा ।

भारत में लगभग 78,000 टन यूरेनियम एवं 518000 टन थोरियम भंडार उपलब्ध हैं । प्राकृतिक यूरेनियम में वृहद अंश (99.3%) यूरेनियम-238 परमाणुओं का होता है । इन दो परमाणु ईंधनों का संपूर्ण उपयोग सीधा यानि प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता । इन्हें ईंधन के तौर पर इस्तेमाल करने से पहले क्रमशः प्लूटोनियम-239 एवं यूरेनियम-233 में परिवर्तित करना पड़ता है। ऐसा करने पर ही भारत में संभावित परमाणु ऊर्जा जो 2062 बिलियन टन (2 लाख करोड़ टन) कोयला के तुल्यमान ऊर्जा के बराबर है, का सम्पूर्ण उपयोग हो पायेगा।

इस कार्य को व्यावहारिक रूप देने के लिए परमाणु ऊर्जा विभाग ने तीन स्तरीय योजना की रूपरेखा तैयार की है। प्रथम स्तर में प्राकृतिक यूरेनियम ईंधन से तापीय (मंद) रिएक्टरों का निर्माण होगा। इन रिएक्टरों में ऊर्जा उत्पादन के साथ ईंधन में उपस्थित यूरेनियम-238 का परिवर्तन प्लूटोनियम-239 में होगा । भारत में दाबित भारी जल रिएक्टर वाले बिजलीघर इसी श्रेणी में आतें हैं दूसरे स्तर में प्रथम स्तर के रिएक्टरों से कृत्रिम तरीके से प्राप्त प्लूटोनियम-239 ईंधन से द्रुत अभिजनक रिएक्टरों का निर्माण किया जायेगा। इन रिएक्टरों के ईंधन में प्लूटोनियम-239 के साथ थोरियम भी होगा। ऊर्जा उत्पादन के साथ थोरियम का परिवर्तन यूरेनियम-233 में हो जायेगा। कलपक्कम का द्रुत अभिजनक प्रायोगिक रिएक्टर दूसरे स्तर का प्रथम सोपान है। कलपक्कम में 500 मेगावाट (बिजली) द्रुत अभिजनक रिएक्टर का निर्माण कार्य भी षुरू हो गया है । तीसरे स्तर में दूसरे स्तर से प्राप्त यूरेनियम-233 ईंधन से द्रुत अभिजनक रिएक्टरों का निर्माण किया जायेगा जिसमें ऊर्जा उत्पादन के साथ थोरियम-232 का परिवर्तन यूरेनियम-233 में किया जायेगा। इस प्रकार सैद्धांतिक तौर पर तीसरे स्तर के रिएक्टरों में सिर्फ थोरियम इस्तेमाल किया जा सकता है ।

नाभिकीय ऊर्जा को भविष्य के ऊर्जा स्रोत के रूप में देखा जा रहा है परन्तु इससे उत्पन्न रेडियोधर्मी अपशिष्ट का सुरक्षित निस्तारण अति आवश्यक है। परमाणु संयंत्रों से उत्पन्न होने वाले अपषिश्टों में उच्च रेडियोधर्मिता रहती है। यह रेडियोधर्मिता तुरन्त समाप्त होने वाली नहीं होती। इसकी अवधि अलग अलग पदार्थों के अनुसार कई महीनों से लेकर कई हजार साल तक होती है। नाभिकीय विकिरणों का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों यथा- कृषि, उद्योग, चिकित्सा आदि में व्यापक रूप से हो रहा है। कृषि के क्षेत्र में नई प्रजातियां विकसित करने एवं पोशक तत्वों के उपयोग, खाद्य सामग्री के परिरक्षण में नाभिकीय तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। नाभिकीय विकिरणों का उपयोग रोगों के निदान में भी किया जाता है। शरीर के अंदर होने वाली क्रियाओं की सूक्ष्मता एवं जटिलता के कारण बहुधा सामान्य रासायनिक विधियॉ अनुपयुक्त ही रहती हैं। रेडियोएक्टिव तत्वों द्वारा यह कार्य सुगमता से सम्पन्न हो सकता है। रेडियोग्राफी, रेडियोइम्यून ऐसे आदि द्वारा विभिन्न रोगों की पहचान षीघ्रता से एवं सुगमता से संभव हो सकी है।

इसके अतिरिक्त भूमिगत पाइपलाइनों में रिसाव, रासायनिक संयंत्रों में उत्पादन प्रक्रिया का अध्ययन, जलविज्ञान में नदियों, बॉधों के जल के जमीन के अन्दर होने वाले प्रवाह की दिशा, स्थान एवं गति का अध्ययन, रेडियोग्राफी कैमरे द्वारा ढलाई, जोड़ों का अभंजक परीक्षण, धातु की चादरों एवं वर्फ की मोटाई मापन आदि में नाभिकीय विकिरणों तथा रेडियो एक्टिव तत्वों का प्रयोग किया जा रहा है।

भारत ने नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में विगत कुछ वर्षों में उल्लेखनीय विकास किया है परन्तु जापान के फुकुशिमा हादसे ने भारत के लिए कुछ सबक भी छोड़े हैं। भारत को जापान के रेडियोधर्मी रिसाव से सबक लेना होगा। कुल मिलाकर नाभिकीय ऊर्जा का उत्पादन और इस्तेमाल अत्यंत सावधानीपूर्वक करने की आवश्यकता है क्योंकि रेडियोधर्मी विकिरण के लाभ के साथ-साथ ऐसे खतरे भी हैं जिनकी भरपाई असंभव है।

औद्योगीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप ऊर्जा के उपलब्ध पारंपरिक स्रोतों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। वर्तमान युग में सतत विकास के लिए ऊर्जा एक अनिवार्य आवश्यकता है। अतः हमें ऊर्जा के संरक्षण पर ध्यान देने की विशेष जरूरत है। ऊर्जा की समस्या का समाधान ऊर्जा के नये वैकल्पिक स्रोतों की खोज से संभव है। फिर भी यदि उपलब्ध ऊर्जा का संरक्षण कर सकें तो यह ऊर्जा बचत हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ऊर्जा संरक्षण के लिए यह आवश्यक है कि समाज में ऊर्जा शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जाये ।

dineshmanidsc@g mail.com

खुलेंगे जिंदगी के राज

प्रमोद भार्गव

प्रमोद भार्गव एक पत्रकार और विज्ञान संचारक के रूप में देशभर में जाने जाते हैं वहीं उनका दूसरा पक्ष एक लोकप्रिय कथाकार का भी है। समकालीन परिदृश्य और समसामयिक विषयों जिनमें विज्ञान भी शामिल है, पर प्रमोद भार्गव की गहरी नज़र रहती है। वे तात्कालिक विज्ञान-अनुसंधान और हलचल पर लिखने के लिये खासे चर्चित हैं। प्रमोद भार्गव म.प्र. के शिवपुरी में निवास करते हैं।

अब देश में जीन कुंडली बनना संभव हो गई है। अभी तक ज्योतिष विद्या से बनाई कुंडली से व्यक्ति के भविष्य और बीमारियों की जानकारी ली जाती थी, किंतु अब यह काम जीन कुंडली भी करेगी। इससे पता चल सकेगा कि भविष्य में आपकी संतानों को 1700 से भी ज्यादा किस्म की आनुवांशिक बीमारियों में से कौनसी बीमारी हो सकती है ? यह भी जान सकेंगे कि एक ही बीमारी से पीड़ित दो अलग-अलग रोगियों में से किसके लिए कौनसी दवा ज्यादा असरकारी होगी। जीन कुंडली बनाना, दरअसल किसी व्यक्ति के जीन समूह यानी जीनोम अनुक्रम (सीक्वेंस) को पढ़ लेना है। फिलहाल जीनोम सीक्वेंसिंग कराने के लिए 70 लाख रुपए खर्च होते हैं, लेकिन अब भारत में यह जांच महज एक लाख रुपए में संभव हो जाएगी। भविष्य में जब इसकी मांग बढ़ेगी तो जीन कुंडली बनवाने का खर्च और भी कम हो जाएगा। 'विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्' (सीएसआईआर) की हैदराबाद एवं दिल्ली स्थित प्रयोगशालाओं ने 1008 नमूनों की जीनोम सीक्वेंसिंग पायलट परीक्षण जांच पूरी करने में सफलता प्राप्त की है। सात अन्य प्रयोगशालाएं भी इस जांच में रुचि दिखा रही हैं। केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री हर्षवर्धन ने स्वयं यह जानकारी दी है।

डीएनए प्रोफाइलिंग बिल यानी, 'मानव डीएनए सरंचना विधेयक' कानून बन जाने के बाद जीन कुंडली बनाने का रास्ता खुला है। इस कानून को लाने का उद्देश्य संदिग्ध अपराधी विचाराधीन कैदी, पीड़ित व्यक्ति और गुमशुदा लोगों की मूल पहचान करना है। इसके जरिए देश के हरेक नागरिक का जीन आधारित कंप्यूटरीकृत डाटाबेस तैयार होगा और एक क्लिक पर मनुष्य की आंतरिक जैविक जानकारियां कम्प्यूटर स्क्रीन पर होंगी। लिहाजा इस विधेयक को भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 में आम नागरिक के मूल अधिकारों में शामिल गोपनीयता के अधिकार का खुला उल्लंघन मानते हुए विरोध भी हुआ था। दरअसल यह आशंका बनी है कि तकनीक आधारित इस डाटाबेस का दुरुपयोग स्वास्थ्य एवं उपचार, बीमा और प्रौद्योगिक उत्पादों से जुड़ी कंपनियां बाला-बाला लीक करने लग जाएंगी? इन सच्चाईयों के परिप्रेक्ष्य में यदि जीनोम सीक्वेंस के परिणाम लीक कर दिए जाते हैं तो यह व्यक्ति की जिंदगी के साथ आत्मघाती पहल होगी। वैसे भी सवा अरब की आबादी और भिन्न-भिन्न नस्ल व जाति वाले देश में कोई निर्विवाद डाटाबेस तैयार हो जाए यह अपने आप में एक बड़ी चुनौती है। क्योंकि अब तक हम न तो विवादों से परे मतदाता पहचान पत्र बना पाए और न ही नागरिक को विशिष्ट पहचान देने का दावा करने वाला आधार कार्ड ? लिहाजा देश के सभी लोगों की जीन आधाारित कुण्डली बना लेना भी एक दुष्कर व असंभव कार्य है ?

मानव-शरीर में मौजूद जीनोम कुंडली यानी डीएनए (ऑक्सीरिवोन्यूक्लिक एसिड) की आंतरिक सरंचना जानना जरूरी है। डीएनए नामक सर्पिल सरंचना अणु कोशिकाओं और गुण-सूत्रों का निर्माण करती है। जब गुण-सूत्र परस्पर समायोजन करते हैं तो एक पूरी संख्या 46 बनती है, जो एक संपूर्ण कोशिका का निर्माण करती है। इनमें 22 गुण-सूत्र एक जैसे होते हैं, किंतु एक भिन्न होता है। गुण-सूत्र की यही विषमता स्त्री अथवा पुरूष के लिंग का निर्धाररण करती है। डीएनए नामक यह जो मौलिक महारसायन है,इसी के माध्यम से बच्चे में माता-पिता के आनुवंशिक गुण-अवगुण स्थानांतरित होते हैं। वंशानुक्रम की यही वह बुनियादी भौतिक रासायनिक, जैविक तथा

क्रियात्मक ईकाई है, जो एक जीन बनाती है। 25000 से 35000 जीनों की संख्या मिलकर एक मानव जीनोम रचती हैं, जिसे इस विषय के विशेषज्ञ पढ़कर व्यक्ति के आनुवांशिकी रहस्यों को किसी पहचान-पत्र की तरह पढ़ सकते हैं।

मानव-जीनोम तीन अरब रासायनिक रेखाओं का तंतु है,जो यह परिभाषित करता है कि वास्तव में मनुष्य है क्या? इसे पढ़ने के लिए 1980 में 'मानव-जीनोम परियोजना' लाई गई थी। जिस पर 13,800 करोड़ रुपय खर्च हुए थे। इसमें अंतरराष्ट्रीय जीव व रसायन विज्ञानियों की बड़ी संख्या में भागीदारी थी। भिन्न मोर्चों पर दायित्व संभालते हुए इन विज्ञानियों ने इस योजना को 2001 में अंजाम तक पहुँचाया। मुकाम पर पहुंचने के बाद आधुनिक जीव वैज्ञानिक आज कोशिकीय रसायनशास्त्र की जटिलता का विश्लेषण करने में पारदर्शी दक्षता का दावा करने लगे हैं। गोयाकि इस सफलता ने यह तय कर दिया कि जीव विज्ञान में रासायनिक विश्लेषण से जैसे सभी समस्याओं का तकनीकी समाधान संभव है?

जीन कुंडली के पक्ष में अपराध व बीमारियां नियंत्रित कर लेने का मजबूत तर्क है। इससे खोए, चुराए और अवैध संबंधों से पैदा हुई संतान के माता-पिता का भी पता चल जाएगा। लावारिस लाशों की पहचान होगी। इस बाबत देशव्यापी चर्चा में रहे नारायण दत्त तिवारी और उनके जैविक पुत्र रोहित शेखर तथा उत्तर प्रदेश सरकार के सजायाता पूर्व मंत्री अमरमणि त्रिपाठी व कवयित्रि मधुमिता शुक्ला के उदाहरण दिए जा सकते हैं। रोहित, तिवारी और उज्जवला शर्मा के नाजायज संबंधों का परिणाम था। तिवारी पूर्व से ही विवाहित थे, इसलिए रोहित को पुत्र के रूप में नहीं स्वीकार रहे थे। किंतु जब रोहित ने खुद को तिवारी एवं उज्ज्वला की जैविक संतान होने की चुनौती सर्वोच्च न्यायालय में दी और डीएनए जांच का दबाव बनाया, तो तिवारी ने हथियार डाल दिए। रोहित ने यह लड़ाई अपना सम्मान हासिल करने की दृष्टि से लड़ी थी, इसलिए यह पवित्र और वैद्य हक के लिए थी। इसी तरह अमरमणि नहीं स्वीकार रहे थे कि मधुमिता से उनके नजायाज संबंध थे। किंतु सीबीआई ने मृतक मधुमिता के गर्भ में पल रहे शिशु-भ्रूण और

अमरमणि का डीएनए टेस्ट कराया तो मजबूत जैविक साक्ष्य मिल गए। जिससे अमरमणि व उनकी पत्नी हत्या के प्रमुख दोषी साबित हुए व आजीवन कारावास की सजा पाई।

जीन संबंधी परिणामों को सबसे अहम् चिकित्सा के क्षेत्र में माना जा रहा है। क्योंकि अभी तक यह शत-प्रतिशत तय नहीं हो सका है कि दवाएं किस तहर बीमारी का प्रतिरोध कर उपचार करती हैं। जाहिर है, अभी ज्यादातर दवाएं अनुमान के आधार पर रोगी को दी जाती हैं। जीन के सूक्ष्म परीक्षण से बीमारी की सार्थक दवा देने की उम्मीद बढ़ गई है। लिहाजा इससे चिकित्सा और जीव-विज्ञान के अनेक राज तो खुलेंगे ही,दवा उद्योग भी फले-फूलेगा। इसीलिए मानव-जीनोम से मिल रही सूचनाओं का दोहन करने के लिए दुनिया भर की दवा, बीमा और जीन-बैंक उपकरण निर्माता बहुराष्ट्रीय कंपनियां अरबों का न केवल निवेश कर रही हैं, बल्कि राज्य सत्ताओं पर जीन-बैंक बनाने का पर्याप्त दबाव भी बना रही हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की आंख, त्वचा, बालों के रंग, नाक व कान के आकार, आवाज, लंबाई जैसे सभी लक्षणों से लेकर बीमारियों का होना या न होना जीन से तय होता है। जीन हरेक प्राणी की कोशिका में होते है। कोशिका में मौजूद तीन अरब जीन की श्रृंखला को जीनों का समूह जीनोम कहा जाता है। इन्हीं जीनों को क्रमवार लगाना जीन कुंडली कहलाना है। जीन की किस्मों का पता लगाकर मलेरिया, कैंसर,

रक्तचाप, मधुमेह और दिल की बीमारियों से कहीं ज्यादा कारगर ढंग से इलाज किया जा सकेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। बावजूद इस हेतु केवल बीमार व्यक्ति अपना डाटाबेस तैयार कराए, हरेक व्यक्ति का जीन डाटा इकट्ठा करने का क्या औचित्य है ? क्योंकि इसके नकारात्मक परिणाम भी देखने में आ सकते हैं। चुनांचे, यदि व्यक्ति की जीन-कुडंली से यह पता चल जाए कि व्यक्ति को भविष्य में फलां बीमारी हो सकती है, तो उसके विवाह में मुश्किल आएगी? बीमा कंपनियां बीमा नहीं करेंगी और यदि व्यक्ति, एड्स से ग्रसित है तो रोग के उभरने से पहले ही उसका समाज से बहिष्कार होना तय है। गंभीर बीमारी की शंका वाले व्यक्ति को खासकर निजी कंपनियां नौकरी देने से भी वंचित कर देंगी। जाहिर है, निजता का यह उल्लंघन भविष्य में मानवाधिकारों के हनन का प्रमुख सबब बन सकता है ?

इसके डेटा संधारण के लिए देश भर में प्रयोगशालाएं बनानी होंगी। प्रयोगशालाओं से तैयार डेटा आंकड़ों को राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर सुरक्षित रखने के लिए डीएनए डाटा-बैंक बनाने होंगे। जीनोम-कुण्डली बनाने के लिए ऐसे सुपर कम्प्यूटरों की जरूरत होगी, जो आज के सबसे तेज गति से चलने वाले कम्प्यूटर से भी हजार गुना अधिक गति से चल सकें। बावजूद महारसायन डीएनए में चलायमान वंशाणुओं की तुलनात्मक गणना मुश्किल है। इस ढांचागत व्यवस्था पर नियंत्रण के लिए विधेयक के मसौदे में डीएनए प्राधिकरण के गठन का भी प्रावधान है। हमारे यहां कंप्यूटराइजेशन होने के पश्चात भी राजस्व-अभिलेख, बिसरा और रक्त संबंधी जांच-रिपोर्ट तथा आंकड़ों का रख-रखाव कतई विश्वसनीय व सुरक्षित नहीं है। भ्रष्टाचार के चलते जांच प्रतिवेदन व डेटा बदल दिए जाते हैं। ऐसी अवस्था में आनुवंशिक रहस्यों की गलत जानकारी व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सामाजिक समरसता से खिलवाड़ कर सकती हैं। बावजूद निजी जेनेटिक परीक्षण को कानून के जरिए अनिवार्य बना देने में कंपनियां इसलिए लगी हैं, जिससे उपकरण और आनुवंशिक सूचनाएं बेचकर मोटा मुनाफा कमाया जा सके ?

pramod.bhargava15@gmail.com

प्रिंटिंग प्रेस

तकनीक, इतिहास और अवदान

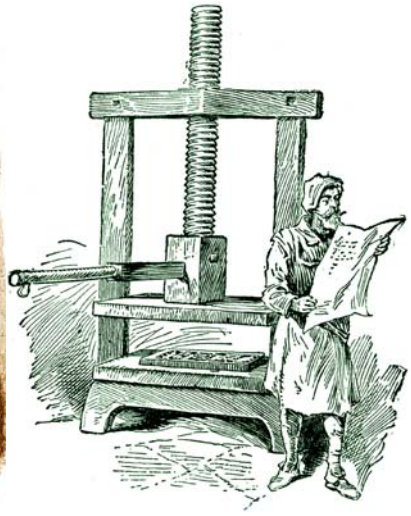

कुणाल सिंह

कुणाल सिंह
हिन्दी के जाने-माने कथाकार। कहानियों की दो किताबें और एक उपन्यास प्रकाशित। ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार व साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार से सम्मानित।
सम्पर्क : सी-3, 304, सौम्य पर्फॉर्च्यून हेरिटेज, आईपीएस के निकट, मिसरोद, भोपाल।

मानव-सभ्यता के इतिहास में आग की खोज, लोहे की खोज, पहिए का आविष्कार आदि के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और क्रान्तिकारी आविष्कार छापेखाने का था। भोजपत्रों के जमाने में 'विद्या' का रूपान्तरण 'ज्ञान' में तो हो चुका था, किन्तु वह अब भी जाति-वर्ण के विशेषाधिकार में था। छापेखाने ने ज्ञान पर चन्द लोगों के उपनिवेश को पहली बार चुनौती दी। पहली बार वह दरबारे-खास से निकलकर दरबारे-आम में प्रतिष्ठित हुआ। इस अर्थ में यह एक युगान्तरकारी मोड़ था, जिसने इतिहास की सबसे बड़ी हेगेमनी को खत्म करते हुए नये दौर का ब्लू-प्रिंट तैयार किया। प्रिंटिंग-प्रेस के बिना आधुनिकता व नवजागरण के तमाम उपक्रमों की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

प्रिंटिंग तकनीक को जरा सूक्ष्मता से देखें तो इसके वास्तविक चरित्रा, इसकी ताकत और इसके प्रभाव की समझ साफ होगी। आमफहम भाषा में प्रिंटिंग प्रेस एक ऐसी तकनीक है जो किसी धात्विक सतह (ब्लॉक्स) पर अंकित स्याही-रँगे अक्षरों को मुद्रण के किसी माध्यम (कागज या कपड़ा) पर उकेरती है। चूँकि अक्षरों के उकेरने की यह प्रविधि सतह को दबाकर (प्रेस करके) सम्पन्न होती थी, इसीलिए इसे प्रेस कहा गया। इस अर्थ में, यह स्याही का एक (ब्लॉक्स) से दूसरे माध्यम (कागज/कपड़ा) पर स्थानान्तरण की तकनीक ठहरती है। गौर से देखा जाए तो इतने-भर से यह लिखावट की पारम्परिक प्रणाली में ऐतिहासिक बदलाव उपस्थित कर देती है। ध्यान दें कि पहले ग्रन्थों की नकल करवाई जाती थी, उसकी प्रतिलिपियाँ तैयार होती थीं। अपवादों को छोड़ दें तो यह कार्य मिशनरी तरीके से गुणग्राही राज्याश्रयों, मठों व तक्षशिला-नालन्दा सदृश बड़े शिक्षण-केन्द्रों की पहल पर होता था। इसके लिए कतीब (किताबों की प्रतिलिपि तैयार करने वाले) की आवश्यकता होती थी, जो एक समय में एक पुस्तक की एक प्रति तैयार करता था। कतीब विशेष गुणधारक होते

पहले ग्रन्थों की नकल करवाई जाती थी, उसकी प्रतिलिपियाँ तैयार होती थीं। अपवादों को छोड़ दें तो यह कार्य मिशनरी तरीके से गुणग्राही राज्याश्रयों, मठों व तक्षशिला-नालन्दा सदृश बड़े शिक्षण-केन्द्रों की पहल पर होता था। इसके लिए कतीब (किताबों की प्रतिलिपि तैयार करने वाले) की आवश्यकता होती थी, जो एक समय में एक पुस्तक की एक प्रति तैयार करता था। कतीब विशेष गुण ग्राहक होते थे, भाषा व व्याकरण में दखल रखने वाले और खुशखती (केलियाग्राफी) में दक्ष। छापेखाने के आविष्कार के बाद इन चोंचलों की आवश्यकता न ठहरी। अब एक अपढ़ मजूर भी कालिदास के ग्रन्थों का मुद्रणकार्य सटीक ढंग से, बगैर किसी मानवीय भूल के (जिसकी इससे पूर्व गुंजाइश रहती थी), कर सकता था। इसके अतिरिक्त प्रिंटिंग प्रेस का सर्वाधिक बड़ा प्रदेय प्रिंटिंग कार्य की उत्पादकता में गुणात्मक वृद्धि प्रदान करना था।

GUTTENBERG AND FAUST DISCOVERING THE ART OF PRINTING.

थे, भाषा व व्याकरण में दखल रखने वाले और खुशखती (केलियाग्राफी) में दक्ष। छापेखाने के आविष्कार के बाद इन चोंचलों की आवश्यकता न ठहरी। अब एक अपढ़ मजूर भी कालिदास के ग्रन्थों का मुद्रणकार्य सटीक ढंग से, बगैर किसी मानवीय भूल के (जिसकी इससे पूर्व गुंजाइश रहती थी), कर सकता था। इसके अतिरिक्त प्रिंटिंग प्रेस का सर्वाधिक बड़ा प्रदेय प्रिंटिंग कार्य की उत्पादकता में गुणात्मक वृद्धि प्रदान करना था। कहें, प्रिंटिंग प्रेस ने प्रिंटिंग को उत्पाद में बदल दिया। यह एक क्रान्तिकारी बदलाव था। पहले पुस्तक-निर्माण का कार्य जितना कठिन व कष्टसाध्य था, अब न रहा। पुस्तकों के प्रति-निर्माण के कार्य में बहुवचनीयता आई। पुस्तक के प्रसार का एक नया संजाल (नेटवर्क) निर्मित हुआ।

प्रिंटिंग प्रेस ने छपाई को उद्यम से उद्योग में परिवर्तित कर दिया। अब पुस्तक की कीमत आँकी जाने लगी। पहले पुस्तक की अन्तर्वस्तु (कॉन्टेंट) उसके मूल्य का स्थानापन्न थी और दुर्लभता उसके मूल्य-निर्धारण में निर्णायक भूमिका निभाती आई थी। पुस्तक में सरस्वती का वास वाले मिथ के पीछे यही अवधारणा है। पुस्तक को पूजनीय समझा जाता था। आज भी पारम्परिक सोच वाले पैर के पुस्तक से छू जाने पर उसे प्रणाम करते हैं। वस्तुतः यह पुस्तक में संचित दुर्लभ ज्ञान और उसके निर्माण में लगने वाले अथक/अकथ परिश्रम के प्रति आदर-भाव है जो छापेखाने के अस्तित्व में आने के पहले के युग में निर्मित हुआ था। अब इस नयी उत्पादन-प्रक्रिया के तहत दुर्लभता जैसे प्रभावी इलेमेंट के विलोपन के बाद पुस्तक-निर्माण में लगने वाली भौतिक वस्तुओं (कागज, स्याही, गत्ता, कपड़ा व अन्यान्य चीजें) तथा श्रम के समवेत मूल्य पुस्तक की कॉस्टिंग तय करने लगे। पुस्तकें उत्पाद की तरह बाजार में उतारी जाने लगीं। वह अनमोल नहीं रहीं, उन पर डिस्काउंट दिया जाने लगा।

इतिहास में देखा जाए तो आधुनिक प्रिंटिंग-प्रेस के आविष्कार का श्रेय जर्मनी के जोहानस गुटनबर्ग (पन्द्रहवीं शती) को जाता है। किन्तु इसे आविष्कार न कह कर पुनराविष्कार कहा जाए, तो ज्यादा बेहतर होगा। वस्तुतः इस तकनीक का प्राचीन रूप तीसरी शती के चीन में, और फिर चीन के ही तांग वंश के शासनकाल (छठी से दसवीं शती) में मौजूद रहा जब लकड़ी के अक्षरों से कपड़े पर चित्रात्मक लिपि में छपाई होती थी। छपाई का यह कार्य उद्यम के स्तर पर ही था, अर्थात् प्रिंटिंग तो होती थी, कोई प्रेस न था। गुटनबर्ग ने इस एकल उद्यम को सामूहिक उद्योग में बदला। उन्होंने प्रिंटिंग की मशीन तैयार की, जहाँ बड़े स्तर पर छपाई का कार्य शुरू हुआ।

लेकिन छपाई के कार्य की शुरुआत चीन से ही मानी जाती है। लकड़ी (बाद में धातुओं) के ब्लॉक्स तथा ईंटों और उससे कागज पर छपाई के प्रमाण वहाँ मिलते हैं। स्याही के लिए पेड़ों के गोंद, मोम और राख का इस्तेमाल किया जाता था। बौद्ध धर्म के व्यापक प्रचार में प्रिंटिंग प्रेस के इस पुरातन स्वरूप का बड़ा योगदान था। चौदहवीं शती के आते-आते चीन, जापान व कोरिया में मूवेबल टाइपसेटर का भी प्रयोग होने लगा था।

गुटनबर्ग की इजाद के बाद प्रिंटिंग के क्षेत्रा में जिस तेजी से यूरोप में बदलाव आये, उतनी त्वरा से चीन में यह तकनीक इसलिए नहीं प्रसरित हुई थी क्योंकि चीनी हरफ चित्रात्मक रही थी। यूरोप में भी शुरुआत में लकड़ी के ब्लॉक्स का ही प्रयोग किया जाता था, जिसे जाइलोग्राफी की संज्ञा दी जाती थी। बाद में गुटनबर्ग ने ऐसी प्रविधि को जोड़ा, जिसके तहत कागज का रोलिंग टेबिल का निर्माण हुआ और छपाई के काम में गुणात्मक वृद्धि हुई। इस प्रेस में छापी गयी 'गुटनबर्ग बाइबिल' की वुफल दो सौ प्रतियों में से आज भी बाइस प्रतियाँ संगृहीत हैं। इससे उस समय के टाइप-केस, धातु के ब्लॉक्स आदि की बनावट का अन्दाजा लगता है। गुटनबर्ग के इस आविष्कार के बाद दशक भर के भीतर इस तकनीक का प्रसार बिजली की गति से हुआ। सन् 1480 तक जर्मनी, इटली, फ्रांस, स्पेन, नीदरलैंड, इंग्लैंड, पोलैंड, स्विट्जरलैंड, बेल्जियम व बोहीमिया में तकरीबन 110 प्रिंटिंग प्रेस स्थापित हो चुके थे।

छापेखाने के इस प्रचलन ने लेखक और पाठक जैसे समुदायों की सर्जना की। लेखक (ऑथर) और पाठ (टेक्स्ट) का जन्म हुआ। अचानक ही यह गुरुत्वपूर्ण हो चला कि किसने लिखा, क्या लिखा और कहाँ लिखा। छापेखाने से पहले पाठ तो बचे रह जाते थे,

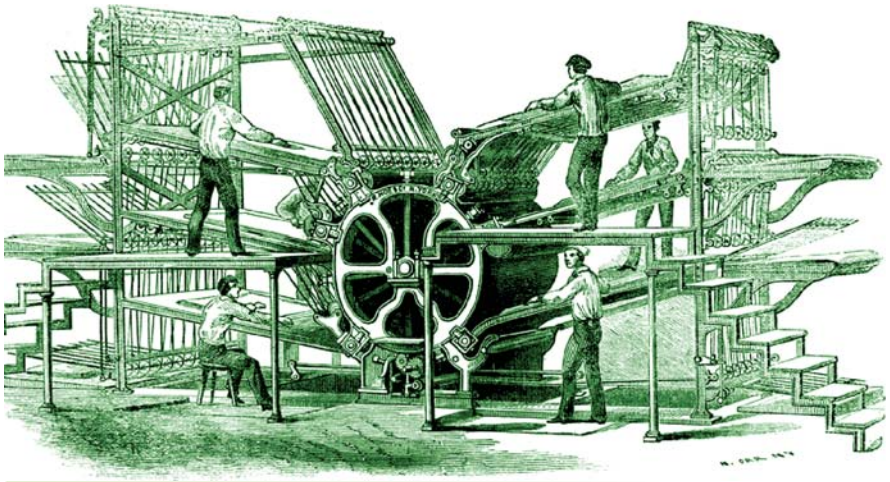

इतिहास में देखा जाए तो आधुनिक प्रिंटिंग-प्रेस के आविष्कार का श्रेय जर्मनी के जोहानस गुटनबर्ग (पन्द्रहवीं शती) को जाता है। किन्तु इसे आविष्कार न कह कर पुनराविष्कार कहा जाए, तो ज्यादा बेहतर होगा। वस्तुतः इस तकनीक का प्राचीन रूप तीसरी शती के चीन में, और फिर चीन के ही तांग वंश के शासनकाल (छठी से दसवीं शती) में मौजूद रहा जब लकड़ी के अक्षरों से कपड़े पर चित्रात्मक लिपि में छपाई होती थी। छपाई का यह कार्य उद्यम के स्तर पर ही था, अर्थात् प्रिंटिंग तो होती थी, कोई प्रेस न था। गुटनबर्ग ने इस एकल उद्यम को सामूहिक उद्योग में बदला। उन्होंने प्रिंटिंग की मशीन तैयार की, जहाँ बड़े स्तर पर छपाई का कार्य शुरू हुआ। लेकिन छपाई के कार्य की शुरुआत चीन से ही मानी जाती है। लकड़ी (बाद में धातुओं) के ब्लॉक्स तथा ईंटों और उससे कागज पर छपाई के प्रमाण वहाँ मिलते हैं। स्याही के लिए पेड़ों के गोंद, मोम और राख का इस्तेमाल किया जाता था।

लेखक कई बार गुमशुदगी के अँधेरे में बिला जाता था। अब बाकायदा सन्दर्भ निर्मित हुए। कबीर के कहे के अलग-अलग पाठ मिलेंगे, तुलसी के यहाँ भी क्षेपकों की भरमार है। अब टेक्स्ट में एकरूपता आई, क्षेपक की गुंजाइश खत्म हुई। छपे हुए के प्रति लोगों में आदरभाव की सृष्टि हुई। कहे हुए से ज्यादा लिखे हुए को विश्वसनीय समझा जाने लगा। आज भी आमतौर पर सुनने को मिल जाता है- 'कहाँ लिखा है कि ऐसा ही होगा' अथवा 'मैं तुम्हें लिखकर देता हूँ कि ऐसा ही होगा'। छापेखाने के अस्तित्व में आने के बाद हमारी रीडिंग हैबिट में भी आमूलचल परिवर्तन आया। पहले अध्ययन-अध्यापन मौखिक स्तर पर था। मौखिकता हममें वाचालता का संचार करती है और वाचालता, नाटकीयता की जननी है। इसलिए संस्कृत में नाटकों का प्राधान्य है। अब पाठ की प्रक्रिया ऐकान्तिक स्तर पर शुरू हुई। कोमलकान्त पदावलियों व नाजुक वाक्यविन्यासों को भी तरजीह दी जाने लगी।

ज्ञान के लोकतान्त्रिक स्वरूप के निर्माण में भी छापेखाने का अवदान है। कोई भी आविष्कार न सिर्फ भविष्य के स्वरूप में परिवर्तन करता है, बल्कि वह अतीत को भी बदलता है। प्रिंटिंग प्रेस ने पूर्ववर्ती साहित्य को पुनर्जीवित किया। लुप्तप्राय ग्रन्थों का व्यापक स्तर पर पुनरुद्धार हुआ। यह प्राचीनता का नवीनीकरण था। इसके अतिरिक्त प्राचीन ज्ञान-सम्पदा का आमजनों के लिए प्रतिबन्धित क्षेत्रा अब सार्वजनिक हो गया। इससे ज्ञान के मनुपुलेशन की सम्भावना उत्तरोत्तर खत्म हुई। औद्योगिक क्रान्ति के बाद गद्य के विकास के साथ-साथ पुस्तकों का डी-वैल्यूएशन आम लोगों के लिए लाभदायक रहा। अब पुस्तकें विशेष लोगों तक सीमित 'लक्जरी' नहीं रही, वह रास्ता-चलते लोगों की पहुँच तक पहुँची। ज्ञान की लोकप्रियता बढ़ी। लैटिन, ग्रीक, संस्वृफत आदि प्राचीन भाषाओं के स्थान पर वर्नाक्यूलर भाषाओं का प्रयोग बढ़ा। वर्तनी का मानकीकरण के क्षेत्रा में भी छापेखाने के अवदान को सहज ही रेखांकित किया जा सकता है। निज भाषा की इस प्रतिष्ठा से राष्ट्रीयता की भावना को बल मिला।

छापेखाने ने ज्ञान-विज्ञान की दूरगामी यात्राओं को सुलभ बनाया। साहित्य के साथ-साथ ज्ञान की अन्यान्य शाखाओं की सामग्री का मानकीकृत रूप सामने आया। पत्रा-पत्रिकाओं की मार्फत लोग पहले से ज्यादा उद्बुद्ध व प्रबुद्ध हुए। अन्य देशों के साथ-साथ भारत के राष्ट्रीय आन्दोलनों में पत्र-पत्रिकाओं के अवदान को भुलाया नहीं जा सकता।

बदलते समय के साथ-साथ छापेखाने के स्वरूप में भी गुणात्मक परिवर्तन आया है। विद्युत शक्ति के समावेश, तदन्तर कम्प्यूटर तकनीक के योग और अन्ततः ऑफसेट प्रिंटिंग प्रोसेस ने प्रेस की उत्पादक क्षमता में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। ऑन-डिमांड प्रिंटिंग इसका अत्याधुनिक रूप है, जहाँ लागत में मामूली फर्क के साथ बल्क प्रिंटिंग ऑर्डर में मनचाहा नियन्त्रण पाया जा सकता है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रिंटिंग-प्रेस ने हमारे समय के नक्शे तराशने में क्रान्तिकारी भूमिका निभाई है और बदलते समय की नित नयी चुनौतियों के बरक्स इसने स्वयं को नित नया करने की मुहिम जारी रखी है।

gorkysingh@gmail.com

हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल

अनुकूल ऊर्जा का क्रांतिकारी स्रोत

प्रांजल धर

मई 1982 को उत्तर प्रदेश के गोण्डा जिले के ज्ञानीपुर गाँव में। जनसंचार एवं पत्रकारिता में परास्नातक। भारतीय जनसंचार संस्थान, जे.एन.यू। कैम्पस से पत्रकारिता में डिप्लोमा।
देश की सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, आलोचना, समीक्षाएँ, यात्रा वृत्तान्त, संस्मरण और आलेख प्रकाशित। राजस्थान पत्रिका पुरस्कार, अवध भारती सम्मान, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, भारत भूषण अग्रवाल कविता पुरस्कार, हरिकृष्ण त्रिवेदी स्मृति युवा पत्रकार प्रोत्साहन पुरस्कार, मीरा मिश्रा स्मृति पुरस्कार से सम्मानित

विज्ञान के क्षेत्र में पर्यावरण और ऊर्जा इक्कीसवीं शताब्दी की निस्सन्देह दो महत्वपूर्ण चिन्ताएँ हैं, जिनके समाधान के लिए सम्पूर्ण विश्व के वैज्ञानिक भाँति-भाँति के अनुसन्धानों में जी-जान से लगे हुए हैं। हालिया समय में दीपोत्सव के पर्व पर भी ग्रीन एनर्जी का मुद्दा चर्चा में रहा है। हम सभी जानते हैं कि कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधन ऊर्जा के परम्परागत स्रोत हैं। ये परम्परागत स्रोत गैर-नवीकरणीय प्रकार के हैं क्योंकि इन स्रोतों के एक बार समाप्त हो जाने के बाद इनका नवीकरण नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त दहन की अपनी प्रक्रिया के दौरान ये गैर-नवीकरणीय स्रोत पर्यावरणीय प्रदूषण फैलाते हैं। यह बात अलग है कि इनमें से प्राकृतिक गैस एक महत्वपूर्ण स्वच्छ ऊर्जा संसाधन है जो प्रायः 'तरल सोना' कहे जाने वाले पेट्रोलियम के साथ या कई बार अलग भी पायी जाती है। इन परम्परागत स्रोतों में प्राकृतिक गैस का महत्व वैश्विक स्तर पर इसलिए बढ़ा है क्योंकि यह अन्य परम्परागत स्रोतों की तुलना में कार्बन-डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन कम करती है और इस प्रकार ग्रीन हाउस प्रभाव को कम करते हुए ओजोन परत को कम क्षति पहुँचाती है। इसीलिए प्राकृतिक गैस को ऊर्जा का पर्यावरण-अनुकूल स्रोत माना जाता है। परन्तु कल्पना कीजिए कि यदि हमें ऊर्जा का एक ऐसा स्रोत मिल जाए, जो पर्यावरण को किसी प्रकार की कोई क्षति ही न पहुँचाता हो, जो किसी तरीके का कोई प्रदूषण न फैलाता हो, जिस स्रोत के समाप्त होने की कोई आशंका या चिन्ता ही न हो, जो ग्रीन एनर्जी यानी हरित ऊर्जा का एक विश्वसनीय स्रोत हो तो क्या यह किसी क्रान्ति या जादू से कम होगा!

विज्ञान, ऊर्जा और पर्यावरण के क्षेत्र में ऐसी ही एक क्रान्ति की है हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल (एचईसी) ने। हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल विश्व को प्रतिष्ठित वैज्ञानिक डॉ. रवीन्द्र कुमार कोटनाला और उनकी शिष्या डॉ. ज्योति शाह की देन है, जिसका आविष्कार नैनोसाइन्स के विद्वान डॉ. आर.के. कोटनाला ने सन् 2015 में किया। डॉ. कोटनाला लम्बे समय से संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड और भारत में सर्वाधिक प्रतिष्ठित जर्नल्स में सह-सम्पादक का कार्य भी कर रहे हैं। डॉ. कोटनाला नेशनल अकादेमी ऑफ़ साइन्सेज़ के फेलो हैं और एशिया-पैसिफिक अकादेमी ऑफ़ मैटीरियल्स के आउटस्टैण्डिंग एकैडमीशियन भी। 411 से अधिक पेपर्स या पेटेण्ट उनके नाम दर्ज हैं और जहाँ तक उनके शोधपत्रों के उल्लेखों (citations) की बात है तो ये उल्लेख एक साल में ही प्रायः एक हजार से अधिक हो जाते हैं, जो अपने आप में बहुत दुर्लभ तथ्य है और एक रिकॉर्ड भी। नैनोटेक्नोलॉजी के जिन जर्नल्स में छपना किसी भी वैज्ञानिक के लिए गर्व की बात होती है, वहाँ डॉ. कोटनाला के न जाने कितने पेपर्स प्रकाशित हो चुके हैं। इनके प्रकाशन की एक देशभक्ति भी है। इनके सारे प्रकाशन भारतीयों के साथ हैं, न कि किसी विदेशी वैज्ञानिक के साथ। ऐसा करने के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि, 'मैं प्राचीन जगद्गुरु भारत को दुनिया में सबसे आगे ले जाना चाहता हूँ।' देश-विदेश की अनेक बेहद महत्वपूर्ण संस्थाओं से सर्वोच्च सम्मान पा चुके डॉ. कोटनाला ने हरित ऊर्जा के स्रोत एचईसी के आविष्कार हेतु एक ऐसा नैनोपोरस पदार्थ बनाया जिसमें ऑक्सीजन की कमी (Oxygen deficient) उत्पन्न की गयी। इस पदार्थ को बनाने में चौदह वर्ष लगे। ये चौदह वर्ष डॉ. कोटनाला के

चौदह वर्ष हैं, जो आम आदमी के बीस-पच्चीस वर्षों के बराबर हैं क्योंकि डॉ. कोटनाला लगातार काम करते हैं, दिन-रात काम करते हैं उन्हें एचईसी के अनुसन्धान से जुड़े कार्यों का जुनून है। यह नैनोपोरस पदार्थ ऐसा इसलिए बनाया गया ताकि ऑक्सीजन की कमी से युक्त यह विशिष्ट पदार्थ जल (साधारण पानी) के अणु को विखण्डित कर सके और विखण्डन के उपरान्त हाइड्रोजन आयन व हाइड्रॉक्साइड आयन को पैदा कर सके। रसायन विज्ञान के सिद्धान्तों के मुताबिक हाइड्रोजन आयन की चालकता जल के अणु के साथ ही होती है, जो हाइड्रोनियम आयन यानी एचथ्रीओप्लस कहलाता है।

पर्यावरण-अनुकूल ऊर्जा के इस क्रान्तिकारी स्रोत यानी हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल की क्रियाविधि (मैकेनिज्म) क्या है? इस क्रियाविधि के निर्माण में वैश्विक स्तर पर भारत का मस्तक ऊँचा करने वाले डॉ. कोटनाला ने सबसे पहले मैग्नीशियम फेराइट बनाया। यह मैग्नीशियम फेराइट इस हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल में मुख्य और आधारिक भूमिका निभाता है। यह जल के अणु को आयनों में विभाजित कर देता है। ये आयन चाँदी के कैथोड और जिंक के एनोड पर एकत्रित होते हैं। इस विधि में एक वोल्ट के बराबर विभव (पोटेंशियल) और चालीस मिलीएम्पियर के बराबर की धारा एक छोटे एचईसी में उत्पन्न हो जाती है। इस तरह विद्युत उत्पादन से हम एलईडी बल्ब, टेबल लैम्प, पंखे आदि को ऊर्जा देकर चलाते हैं। ऐसे कई हाइड्रोइलेक्ट्रिक प्लेट्स का इस्तेमाल करके देश के ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में यह सुविधा पहुँचायी जा सकती है कि वहाँ रोशनी हो सके या आज की भाषा में कहें, तो संचार के एक महत्वपूर्ण साधन, मोबाइल फोन की चार्जिंग इत्यादि भलीभाँति सम्पन्न हो सके। इसके अतिरिक्त एचईसी से टेबल लैम्प जलाया जा सकता है, पंखे चलाए जा सकते हैं और बहुत सारे जनकल्याणकारी कामों में इसका सार्थक उपयोग किया जा सकता है। जब बहुत सारे हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल्स को आपस में जोड़ दिया जाता है तो जल की महज कुछ बूँदों से ही विद्युत की पर्याप्त मात्रा उत्पादित कर ली जाती है।

जब जल से विद्युत उत्पन्न करने की बात आती है तो हम सबके मन में जलविद्युत यानी बाँध बनाकर बिजली

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में एचईसी पर कार्यरत डॉ.आर.के.कोटनाला अपनी शिष्या डॉ. ज्योति शाह के साथ

उत्पादन करने के यन्त्रों का चित्र उभरता है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि डॉ. कोटनाला द्वारा आविष्कृत इस तरीके की विद्युत जल की गति के कारण नहीं उत्पन्न होती, बल्कि यह तो स्थिर जल से और वह भी स्थिर जल की बहुत थोड़ी-सी ही मात्रा से पैदा की जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो यहाँ गतिज ऊर्जा का कोई समीकरण नहीं मौजूद है और न ही किसी तरीके का कोई बाँध वगैरह बनाने की आवश्यकता है। यह बात तब और प्रासंगिक हो जाती है, जब हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि बाँधों के कारण विस्थापन और पुनर्वास की समस्याएँ बहुत जटिल होती चली गयी हैं। यह सुखद है कि हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल ऐसी किसी भी समस्या को कभी जन्म नहीं देता। बल्कि, इसके उलट, यह तो अनेक ऐसी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है, जिनसे आज हरेक देश और प्रत्येक महाद्वीप जूझ रहा है।

जहाँ सौर ऊर्जा के साथ परेशानी यह है कि शीतोष्ण कटिबन्धीय और ध्रुवीय भौगोलिक क्षेत्रों में सूरज बहुत दिनों तक दिखता ही नहीं, दिखता भी है तो उसकी किरणें वहाँ पृथ्वी पर लम्बवत न पड़कर, तिरछी पड़ती हैं, इसलिए इन इलाकों में सौर ऊर्जा की मात्रा बहुत ही कम हो जाती है। जबकि हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल पृथ्वी के किसी भी कोने पर समान रूप से ऊर्जा उत्पन्न करता है, चाहे वह साइबेरिया, आइसलैण्ड या अलास्का का दुर्गम भौगोलिक क्षेत्र हो या फिर अफ्रीकी देशों जैसा कोई ऊष्ण कटिबन्धीय इलाका। इसी तरह पवन ऊर्जा की बात करें, तो दुनिया के बहुत कम देशों में ही पवन की प्रचुर मात्रा उपलब्ध है। पवन की गति भी पवन-ऊर्जा की परियोजनाओं के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। यह गति महाद्वीपों के सीमान्त भौगोलिक इलाकों में तो मिल भी सकती है लेकिन जो देश विभिन्न महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में अवस्थित हैं, वहाँ पवन की गति की समस्या बरकरार है। इसके अतिरिक्त सूरज या पवन को एक जगह से दूसरी जगह तक ले नहीं जाया जा सकता, जबकि डॉ. कोटनाला द्वारा आविष्कृत एचईसी एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने-ले जाने में आसान है और मानव ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्र की सेहत और सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय तन्त्र के लिए पूर्ण रूप से सुरक्षित भी है।

नवीकरणीय ऊर्जा के रूप में नाभिकीय अथवा आणविक ऊर्जा एक विकल्प के रूप में सामने जरूर आया है लेकिन ऐसी ऊर्जा खतरनाक विकिरण पैदा कर सकती है और चर्नोबिल की या जापान की फुकुशा जैसे संयन्त्रों की विनाशकारी दुर्घटनाएँ इसकी ज्वलन्त प्रमाण हैं। डॉ. कोटनाला जी द्वारा आविष्कृत यन्त्र और कार्यविधि एक तो दुर्घटनाओं की आशंकाओं से मुक्त है और दूसरे यह प्रदूषण की समस्या से भी इसलिए मुक्त है क्योंकि एचईसी में सिर्फ पानी का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें जल के अलावा न तो किसी अम्ल का और न ही किसी क्षार का कोई इस्तेमाल होता है। जल चक्र की पूरी सैद्धान्तिकी यहाँ समझ ली गयी है। इसीलिए एचईसी नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में एक अनूठा विकल्प साबित हुआ है। पर्यावरण के संरक्षण में एचईसी की बहुत बड़ी भूमिका है क्योंकि इसमें न तो कोई विषैली या खतरनाक गैस और न ही किसी तरीके की कार्बन डाई आक्साइड या कोई अन्य प्रदूषणकारी गैस इससे उत्सर्जित होती है। यहाँ ध्वनि प्रदूषण भी नदारद है क्योंकि इस पूरी प्रक्रिया में किसी भी तरह का कोई शोर ही नहीं पैदा होता। शोर की तो बात ही छोड़ दीजिए, ज़रा-सी आवाज़ भी नहीं होती इस पूरे विद्युत-उत्पादन में। यहाँ तक कि एचईसी की इस क्रियाविधि के जो उप-उत्पाद (बाईप्रोडक्ट्स) हैं, उनकी भी

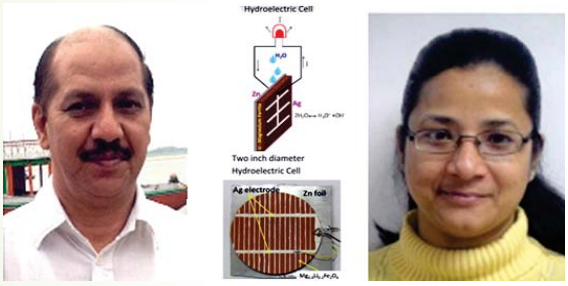

डॉ.आर.के.कोटनाला, डॉ.ज्योति शाह और एचईसी की प्लेट्स

बहुत महत्वपूर्ण उपयोगिताएँ हैं। उदाहरण के लिए, हाइड्रोजन गैस (स्वच्छ ऊर्जा का स्रोत) एवं जिंक हाइड्रॉक्साइड (सर्जिकल ड्रेसिंग में उपयोगी, परिधानों को रंगने में उपयोगी, छोटे कीटाणुओं आदि को मारने में उपयोगी यानी कीटनाशक) जैसे उप-उत्पाद।

ऐसे आविष्कार जो देश का मस्तक ऊँचा कर दें, जो विश्व को एक नया और बेहतर विकल्प प्रदान कर सकें, बहुत ही कठिन परिश्रम से सम्भव हो पाते हैं। डॉ. कोटनाला ने अपने इस आविष्कार के पीछे अपना जीवन झोंक दिया है। दशहरा हो दीपावली, नव-वर्ष हो या ईद, खुद उनका अपना ही जन्मदिन हो या फिर कोई और, कितना ही महत्वपूर्ण अवसर क्यों न हो - इन सबसे परे होकर वह प्रयोगशाला में रमे रहते हैं। उनकी सहयोगी वैज्ञानिक डॉ. ज्योति शाह का भी उनके इस आविष्कार में खासा योगदान है और वे भी लगातार इस पर नए-नए अनुसन्धान कार्य करती रहती हैं। अगर डॉ. कोटनाला ने वैश्विक स्तर पर भारत का भाल ऊँचा किया है तो डॉ. ज्योति शाह भारत की विदुषी नारियों की उस परम्परा में एक कड़ी की तरह हैं, जिन पर हम ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व और सारी मानवता गर्व करती है।

यह हाइड्रोइलेक्ट्रिक सेल कमरे के तापमान पर कार्य करता है, यह इसकी अतिरिक्त खूबी है। बाहर से इसे गरम करने का या ठंडा करने की या फिर किसी भी अन्य रूप में इस सेल को कोई ताप या ऊर्जा देने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती; जैसे - इसे प्रकाश देने की या धूप में सेंकने आदि की कोई जरूरत ही नहीं है। व्यापक और क्रान्तिकारी परिवर्तन की अग्रदूत बनी इस एचईसी को बनाने के लिए एक विशेष किस्म के पाउडर को उच्च दाब के अन्तर्गत सम्पीडित करके ईंट के रंग वाली पतली ठोस चादर की शक्ल में ढाल लिया जाता है। यह चादर (pallets) असल में फेराइट नामक एक भंगुर पदार्थ की बनी होती है जिसे चार इंच या दो इंच की भुजा वाले वर्गाकार चादर की शक्ल में क्रमशः तोड़ या काट लिया जाता है जो कि वास्तव में एक बहुत ही नाजुक और कठिन प्रक्रिया है। इस चादर को अनेक आकारों और आकृतियों में डॉ. कोटनाला ने ढाला है, जैसे - वर्गाकार, आयताकार, वृत्ताकार यानी सिक्के की तरह या फिर अँगूठियों और

यूबीएम (लन्दन) द्वारा प्रदत्त नवीकरणीय ऊर्जा पुरस्कार ग्रहण करते हुए डॉ.आर.के.कोटनाला और उनकी शिष्या डॉ.ज्योति शाह

छल्लों की तरह। बहुत सारी चादरों और अनेक सेल्स को जोड़कर प्रचुर मात्रा में बिजली यानी ऊर्जा पैदा की जा सकती है।

यह भी एक संयोग ही है कि डॉ. कोटनाला का जन्म भी, महात्मा गांधी या लाल बहादुर शास्त्री की ही तरह, दो अक्तूबर को ही हुआ। दो अक्तूबर सन् 1957 को उत्तराखण्ड के गढ़वाल जिले के कोटनाली नामक गाँव में जन्मे डॉ. कोटनाला ने सन् 1982 में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली से सिलिकन सोलर सेल में पीएचडी की डिग्री हासिल की। स्पष्ट है कि वे प्रारम्भ से ही ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों की खोज में व्याकुल रहे। डॉ. कोटनाला सन् 1982 में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला (एनपीएल) में वैज्ञानिक नियुक्त हुए और तब से लगातार ऊर्जा के वैकल्पिक, बेहतर और पर्यावरण-अनुकूल स्रोत की खोज में लगे रहे। देखा जाए, तो वैज्ञानिक, साहित्यकार या कलाकार कभी सेवानिवृत्त नहीं होते, लेकिन लौकिक-औपचारिक भाषा में कहा जाए तो कुछ ही महीनों पहले सेवानिवृत्त हुए डॉ. कोटनाला अत्यन्त प्रतिष्ठित राजा रमन्ना फ़ेलोशिप के अन्तर्गत अपने कामकाज को और भी अधिक परिष्कृत कर रहे हैं।

विज्ञान संचार और समाज में वैज्ञानिक चेतना के विकास के लिए अनवरत कठोर परिश्रम करने वाले डॉ. कोटनाला का मानना है कि कलाकार ज्यों-ज्यों बूढ़ा होता है, कला त्यों-त्यों जवान होती हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो अच्छे से बेहतर और बेहतर से बेहतरीन करने की गुंजाइश हमेशा ही बनी रहती है, आवश्यकता होती है सृष्टि और प्रकृति के इन नियमों को समझने की। एचईसी के इस परिष्करण में ऊर्जा से भरे हुए डॉ. कोटनाला के साथ पूरी की पूरी एक टीम है, खासकर सादगी से लबरेज डॉ. ज्योति शाह। ज्योति शाह का जन्म सन् 1978 में लखनऊ में हुआ जो डॉ. कोटनाला की सहयोगी वैज्ञानिक हैं और उन्हीं के मार्गनिर्देशन में ज्योति शाह ने अपनी पीएचडी भी की है। जब दुनिया में सौर ऊर्जा के विषय इतने प्रचलित नहीं थे, जितने आज हैं, तब आज से लगभग चालीस वर्ष पहले डॉ. कोटनाला ने सौर ऊर्जा पर एक पुस्तक लिखी थी, जो आज तक विज्ञान के क्षेत्र में पढ़ी और पढ़ाई जाती है। डॉ. कोटनाला ने सन् 1998 में एक प्रयोगशाला बनायी, जिसके निर्माण में लगभग तीन वर्ष लगे। डॉ. कोटनाला की सेवानिवृत्ति के समय यह प्रयोगशाला पर्याप्त आय का अर्जन कर रही थी और औद्योगिक जगत में विज्ञान के महत्व को रूपायित कर रही थी।

डॉ. कोटनाला ने हमारे राष्ट्र का नाम रोशन किया है और अनेक प्रतिष्ठित वैश्विक संस्थानों और विश्वविद्यालयों के लिए नैनोसाइन्स और नैनोटेक्नॉलॉजी के पाठ्यक्रम निर्मित किये हैं ताकि आम भारतीय जनता तक विज्ञान के कल्याणकारी लाभ पहुँच सकें और आम जनता का जीवन प्रकाशित हो सके। नैनो प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में डॉ. कोटनाला ने पाँच प्रतिष्ठित प्रयोगशालाओं के निर्माण में नेतृत्वकारी भूमिका अदा की है, जो आज भी समाज और विज्ञान को सकारात्मक दिशा प्रदान कर रही हैं। डॉ. कोटनाला को अनेक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार और सम्मान मिले हैं। जैसे- नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में एचईसी के आविष्कार हेतु लन्दन आधारित अन्तरराष्ट्रीय संस्था/कम्पनी यूबीएम (यूनाइटेड बिजिनेस मीडिया) द्वारा उन्हें स्पेशल रिकग्नीशन अवार्ड दिया गया है। पूरी दुनिया का वैज्ञानिक समुदाय जानता है कि यूबीएम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अत्यन्त प्रतिष्ठित प्लेटफ़ॉर्म्स में से एक है। इसके अतिरिक्त सन् 2018 के जुलाई माह में उन्हें विश्व के विशालतम लोकतन्त्र भारत के परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा राजा रमन्ना फेलो के रूप में स्वीकार किया गया।

pranjaldhar@gmail.com

प्राकृतिक आपदाओं
से जुड़े मानव स्वास्थ्य मुद्दे

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

वनस्पति शास्त्र में शोध करने वाली डॉ. शुभ्रता मिश्रा युवा विज्ञान लेखिका हैं आपने इंडिया साइंस वॉयर, विज्ञान प्रसार में अब तक 350 विज्ञान कथा और लेख लिखे हैं। आपके विज्ञान लेख आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं। अंग्रेजी में पंद्रह तथा हिन्दी में पांच पुस्तकें लिखीं जिनमें 'भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र' काफी चर्चित हुई है। इस किताब को राष्ट्रीय अंटार्कटिक एवं समुद्री अनुसंधान केन्द्र, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया है। कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. शुभ्रता गोवा में रहती हैं।

पृथ्वी के अलग अलग क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाओं का आना एक सामान्य प्रक्रिया है, लेकिन पिछली शताब्दी में जब से जलवायु परिवर्तन शब्द का प्रचलन दुनिया में बढ़ा है, प्राकृतिक आपदाओं की विशुद्धता में मानवजनित गतिविधियों के हस्तक्षेप की बात कुछ ज्यादा ही उभरकर सामने आई है। साधारणतः प्रकृति ने अपने समस्त जीवों के लिए संसाधनों की पर्याप्त सम्पन्नता दी हुई है, हर जीव यदि अपने अपने भाग का समुचित प्रयोग करता तो संभवतः आपदा जैसा शब्द उत्पन्न ही न होता। आपदा रहित पृथ्वी प्राकृतिक संसाधनीय उपभोग के नियंत्रण की आदर्शवादी स्थिति को कहा जा सकता है। लेकिन कोई भी आदर्श प्रकृति में विलक्षण गुण की श्रेणी में आता है और सामान्य का विलक्षण होना थोड़ा संदेहास्पद ही है। यही बात प्राकृतिक आपदाओं की विलक्षणता पर लागू होती है, क्योंकि प्राकृतिक आपदाएं प्रकृति का विलक्षण गुण अवश्य हैं लेकिन मानवजनित गतिविधियों ने उनकी आवृति को बढ़ाकर उनको एक सामान्य दुर्घटना की श्रेणी तक पहुँचा दिया है।

प्राकृतिक आपदाएं कोई नया शब्द नहीं है, सभी लोग भूकंप, बाढ़, तूफान, सूखा, भूस्खलन आदि से भलीभांति परिचित हैं। वास्तव में प्राकृतिक आपदाएं वे भूप्रक्रियाएं हुआ करती थीं, जिनको विभिन्न जैवीय औरभू-रासायनिक चक्रों के माध्यम से स्वयं प्रकृति अपने संसाधनों के नियंत्रण हेतु समय समय पर संचालित करती रहती थी। इस प्रकार प्रकृति में संतुलन नियमित बना रहता था। लेकिन वर्तमान शताब्दी में प्रकृति का यह संतुलन मानव गतिविधियों के कारण काफी असंतुलित हो गया है। निःसंदेह इस प्राकृतिक असंतुलन से यादृच्छिक हुईं प्राकृतिक आपदाओं का प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ा है।

जब भी कोई प्राकृतिक आपदा आती है, तब कितने लोग मरे, कितने घायल हुए और कितनी सम्पत्ति का नुकसान हुआ, ऐसी बातों पर ही ध्यान दिया जाता है और उनको ठीक करने के प्रयास किए जाते हैं। आपदा प्रभावित लोगों को मुआवजे मिल जाते हैं, फिर से इमारतें खड़ी करने की जद्दोजहद शुरु कर दी जाती है। लेकिन आम लोगों का बहुत कम ध्यान इस विषय की तरफ खींचा जाता है कि हर प्राकृतिक आपदा अपने साथ कई स्वास्थ्य मुद्दे भी लेकर आती है। चंद मिनटों के भूकंप या कुछ दिनों के तूफान अथवा सप्ताहों तक चलतीं बाढ़ें लोगों और पक्षियों व जानवरों को सीधे-सीधे मारने के बाद सालों तक बीमारियों के माध्यम से मौत की नींद सुलाती रहती हैं। प्राकृतिक आपदा विशेष से कौन सी बीमारियां हुईं या कितने लोग मानसिक आघातों के शिकार हुए, इसके शोध आंकड़े मिल पाना मुश्किल है। इसका कारण यह है कि यह विषय शोध का अवश्य है,

आज से छब्बीस साल पहले 30 सितंबर 1993 को सुबह 3 बजकर 56 मिनट पर महाराष्ट्र के लातूर जिले में 40 सेकंड तक आए 6.4 रिक्टर स्केल तीव्रता के विनाशकारी भूकंप को शायद ही कोई भूला होगा। इस भूकंप में करीब 20 हजार लोग मरे थे और 30 हजार लोग घायल हुए थे। इससे कुल 52 गांव पूरी तरह तबाह हो गए थे। इस भूकंप का केंद्र किलारी नामक स्थान में भूमि से 12 किलोमीटर नीचे था, जहां कभी एक बड़ा सा ज्वालामुखी मुहाना हुआ करता था। इस भूकम्प के आने की भूवैज्ञानिक व्याख्या यह कहती है कि करोड़ों साल पहले भारत एक विशाल महाद्वीप गोंडवाना से टूट कर अलग हुआ और हजारों साल तक समुद्र में तैरता रहा। फिर उत्तर की ओर लगभग 2000 किलोमीटर तक खिसकती हुई इस भारतीय पट्टी की यूरेशियन पट्टी से भीषण टक्कर हुई परिणाम स्वरुप हिमालय जैसे विशाल पर्वत का जन्म हुआ। आज भी भारतीय पट्टी उत्तर की तरफ सरकती जा रही है और लगातार यूरेशियन पट्टी को दबाती जा रही है। इसी भूगर्भीय हलचल के कारण लातूर का भूकंप आया था।

परंतु शोध उस अनुपात में हो नहीं पाते। फलतः प्राकृतिक आपदाओं के इस पक्ष का प्रकटन विस्तार से हो नहीं पाया है। लेकिन इसके बारे में जानना और समझना बेहद आवश्यक है, क्योंकि आज लोग सालभर किसी न किसी प्राकृतिक आपदा से जूझते ही रहते हैं।

दुनिया में लगातार हो रहीं प्राकृतिक आपदाओं के कारण लाखों लोग मृत्यु के घाट उतर रहे हैं, वहीं अरबों लोगों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। विशेष तौर पर भूकंप, तूफान औरबाढ़ जैसी सर्वाधिक होने वाली गंभीर प्राकृतिक आपदाओं के कारण सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी संरचनात्मकता में अत्यधिक क्षति हो रही है। विश्व के दूसरे छोरों और अधिक पुराने दौर तक जाने की भी जरुरत नहीं है, सिर्फ हम अपने देश की ही बात करें तो पिछले सिर्फ पच्चीस सालों में ही भारत ने कितनी ही भीषण प्राकृतिक आपदाओं को सहन किया है। इन आपदाओं से भारत की मानव स्वास्थ्य प्रणाली बुरी तरह प्रभावित हुई है। यूं भी भूवैज्ञानिकों के अनुसार भूवैशिष्ट्य और भूविविधताओं के कारण भारतीय उपमहाद्वीप में प्राकृतिक आपदाओं की संभावनाएं सर्वाधिक हैं। कहीं न कहीं यह सच भी है क्योंकि भारत में बार-बार और शीध्रता से भूकम्प, चक्रवात, बाढ़ और सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं।

आज से छब्बीस साल पहले 30 सितंबर 1993 को सुबह 3 बजकर 56 मिनट पर महाराष्ट्र के लातूर जिले में 40 सेकंड तक आए 6.4 रिक्टर स्केल तीव्रता के विनाशकारी भूकंप को शायद ही कोई भूला होगा। इस भूकंप में करीब 20 हजार लोग मरे थे और 30 हजार लोग घायल हुए थे। इससे कुल 52 गांव पूरी तरह तबाह हो गए थे। इस भूकंप का केंद्र किलारी नामक स्थान में भूमि से 12 किलोमीटर नीचे था, जहां कभी एक बड़ा सा ज्वालामुखी मुहाना हुआ करता था। इस भूकम्प के आने की भूवैज्ञानिक व्याख्या यह कहती है कि करोड़ों साल पहले भारत एक विशाल महाद्वीप गोंडवाना से टूट कर अलग हुआ और हजारों साल तक समुद्र में तैरता रहा। फिर उत्तर की ओर लगभग 2000 किलोमीटर तक खिसकती हुई इस भारतीय पट्टी की यूरेशियन पट्टी से भीषण टक्कर हुई परिणाम स्वरुप हिमालय जैसे विशाल पर्वत का जन्म हुआ। आज भी भारतीय पट्टी उत्तर की तरफ सरकती जा रही है और लगातार यूरेशियन पट्टी को दबाती जा रही है। इसी भूगर्भीय हलचल के कारण लातूर का भूकंप आया था। इस भूकम्प से संबंधी ये सभी बातें उपलब्ध हैं, पर क्या इसके बाद लोग बीमारियों से नहीं जूझे होंगे, इसकी जानकारी कहीं नहीं मिलती।

इसी तरह 25 से 29 अक्टूबर 1999 में ओडिशा में 260 किलोमीटर प्रति घंटा से चलनी वाली हवाओं वाला 'सुपर सायक्लोन' नामक उत्तर हिंद महासागर का सबसे शक्तिशाली खतरनाक चक्रवाती तूफान आया था। इस तूफान से लगभग 15000 लोग मरे थे और एक ही रात में लाखों लोग बेधर हो गए थे। इसके कारण लगभग 25 लाख पालतू जानवर मारे गए थे। यहां तक कि ओडिशा के अनेक गांवों के नामोनिशान तक मिट गए। भूवैज्ञानिकों के अनुसार इस तूफान का केंद्रीय दबाव 912 मिलिबार था।

फिर 26 जनवरी 2001 को गुजरात के दो जिलों कच्छ व भुज में सुबह 8 बजकर 46 मिनट पर 6.9 की तीव्रता का भयंकर भूकंप आया था। इस प्राकृतिक आपदा में 7904 गांव तबाह हो गए थे। 16,927 लोगों की मौत हुई थी और 1 लाख 66 हजार 836 लोग धायल हुए थे। इसके अलावा 1 लाख 47 लाख 499 लोग घर से बेघर हुए थे।

भारत की इन पच्चीस वर्षों के भीतर आई सबसे चर्चित प्राकृतिक आपदा सूनामी थी। 26 दिसंबर 2004 को हिंद महासागर के तटीय क्षेत्रों में 9.15 की तीव्रता के भूकंप के आने के बाद आई सूनामी लहर ने दक्षिण भारत के राज्यों में कहर बरपाया था। इस सूनामी का प्रभाव भारत के अलावा थाइलैंड, मेडागास्कर, मालदीव, मलेशिया, म्यांमार, सेशेल्स, सोमालिया, तंजानिया, केन्या, बांग्लादेश तक भी पड़ा था। अकेले भारत में सूनामी से लगभग 16279 लोगों की हुई मौत हुई थी। जून 2013 में बारिश, बाढ़ और भूस्खलन की प्राकृतिक आपदाओं ने मिलकर केदारनाथ की भीषण त्रासदी को जन्म दिया था। जिसने उत्तर भारत के रुद्रप्रयाग, चमोली, उत्तरकाशी, बागेश्वर, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ जिलों में भारी तबाही मचाई थी। वर्ष 2015 में कश्मीर में सदी की

सबसे भीषण बाढ़ आई थी।

पिछले साल 2018 में आई केरल की प्रलयकारी बाढ़ भी भारत की बड़ी प्राकृतिक आपदाओं में से एक रही, जो पिछले 100 सालों में आई सबसे भीषण बाढ़ थी। केरल की इस बाढ़ ने भी कई लोगों की जान ली थी और एक अनुमान के मुताबिक यहां पर करीब 40 हजार करोड़ रुपये का नुकसान हुआ था।इसी साल 2019 में चक्रवाती तूफान 'फानी' ने अपने विकराल रूप से भारत के पूर्वी तटीय इलाकों मेंकहर बरपाया था। वहीं सन् 2019 बिहार, उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश सहित लगभग पूरे भारत में बाढ़ से प्रभावित करने वाला साल रहा।

भारत हो या दुनिया का कोई भी देश हो प्राकृतिक आपदाओं की पूरी जानकारी उपलब्ध है, परंतु इनसे जुड़े स्वास्थ मुद्दों पर बात करना आज की मांग है। प्राकृतिक आपदाओं संबंधी स्वास्थ्य मुद्दोंको दो प्रमुख आधारों पर समझना होगा, जिनमें पहला मानसिक स्वास्थ्य और दूसरा संचारी व वाहक जनित रोग शामिल हैं। प्राकृतिक आपदाओं के बारे में सुनने मात्र से व्यक्ति मानसिक रूप से व्यथित हो जाता है, तब वे लोग जिनका सामना इनसे प्रत्यक्षतौर पर होता है, वे कितने मानसिक तनाव के दौर से गुजरते होंगे, यह मनोवैज्ञानिक शोध का विषय है। फिर भी जितना अध्ययन इस दिशा में किया गया है उससे तथ्य सामने आते हैं कि प्राकृतिक आपदाओं से गुजरे लोग कई तरह के मानसिक तनावों से ग्रस्त होते हैं।

इन मानसिक तनावों के पीछे बहुत से कारण होते हैं। जैसे अक्सर ही प्राकृतिक आपदाओं के बाद कई लोग अपने धरों और प्रियजनों को खो देते हैं। इस दौरान विशेषतौर पर बच्चे अपने माता-पिता को, या माता-पिता अपने बच्चों की दर्दनाक मौत अपनी आंखों के सामने देखते हैं। ये सभी परिस्थितियां लोगों को विभिन्न मानसिक रोगों जैसे सदमा, चिंता, दुख या अवसाद से पीड़ित बना देती हैं। कई बार भीषण प्राकृतिक आपदाओं के बाद महीनों, या वर्षों तक लोगों को आपातकालीन शिविरों में रहना पड़ता है। ऐसे में आर्थिक तंगी उनके लिए बुनियादी जरुरतों और संसाधनों को न जुटा पाने का बड़ा कारण बन जाती हैं और वे मानसिक तनाव संबंधी रोगों का शिकार हो जाते हैं।

प्राकृतिक आपदाओं संबंधी स्वास्थ्य मुद्दों में दूसरा विचारणीय बिंदु आपदाग्रस्त समुदायों में कई गंभीर बीमारियों का पनपना है। प्राकृतिक आपदाओं के बाद संचारी रोगों के फैलने और महामारी के प्रकोप का खतरा अधिक हो जाता है। जैसे कि हमने पहले ही कहा कि प्राकृतिक आपदाओं के बाद लोग काफी समय तक शिविरों में इकट्ठे रहने के लिए मजबूर होते हैं। परिवार और पड़ोसी सभी लोग भारी संख्या में अक्सर एक साथ ही छोटे-छोटे आश्रय शिविरों में दिन काटते हैं। ऐसा होने से उन स्थान विशेष में विषाणुओं और जीवाणुओं जैसे रोगजनक आसानी और शीध्रता से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुँच सकते हैं।

इन शिविरों में रह रही भीड़ में जुकाम और फ्लू जैसी श्वसन संबंधी संचारी बीमारियां बहुत खतरनाक तरीके से फैलती हैं। कुछ लोगों में विशेष रूप से वयस्कों और कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली वाले लोगों में कभी-कभी निमोनिया जैसी गंभीर बीमारी भी हो जाती है। इन बीमारियों से जुड़े ये सभी रोग जनक सांसों के माध्यम से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में जाते हैं। आपस में एक दूसरे के वस्त्रों के इस्तेमाल और आपसी संपर्क से भी लोग संक्रमित हो सकते हैं। जितने अधिक लोग संक्रमित होते हैं, संचारी रोग उतनी ही तेजी से फैलते हैं।

एक ओर जहां संचारी रोगों में लोगों के सीधे आपसी संपर्क में आना खतरनाक साबित होता है, वहीं दूसरी ओर कुछ वाहक जनित रोग भी प्राकृतिक आपदाओं के बाद पनपने में अनुकूल हो जाते हैं। इन रोगवाहकों में प्रमुख रुप से मच्छर और मक्खी होते हैं। प्राकृतिक आपदाओं से मची तबाही के बाद अस्तव्यस्त हुई व्यवस्था से कई बार गड्ढ़ों में पानी एक तरफ जमा हो जाता है और रोगवाहक मच्छरों को पनपने का अच्छा मौका मिल जाता है। ये गड्ढे रोगजनकों की आबादी में भारी वृद्धि का कारण बन सकते हैं औरसमयानुसार संबद्ध रोगों के प्रकोप को बढ़ा देते है। मच्छरों से फैलने वाले मलेरिया या डेंगू बुखार जैसी बीमारियां प्राकृतिक आपदाओं के बाद होने वाली प्रमुख बीमारियों में शामिल हैं। हमारे यहां इसी साल बिहार में बाढ़ के बाद डेंगू के कई मामले सामने आए हैं।

भारत हो या दुनिया का कोई भी देश हो प्राकृतिक आपदाओं की पूरी जानकारी उपलब्ध है, परंतु इनसे जुड़े स्वास्थ मुद्दों पर बात करना आज की मांग है। प्राकृतिक आपदाओं संबंधी स्वास्थ्य मुद्दोंको दो प्रमुख आधारों पर समझना होगा, जिनमें पहला मानसिक स्वास्थ्य और दूसरा संचारी व वाहक जनित रोग शामिल हैं। प्राकृतिक आपदाओं के बारे में सुनने मात्र से व्यक्ति मानसिक रूप से व्यथित हो जाता है, तब वे लोग जिनका सामना इनसे प्रत्यक्षतौर पर होता है, वे कितने मानसिक तनाव के दौर से गुजरते होंगे, यह मनोवैज्ञानिक शोध का विषय है। फिर भी जितना अध्ययन इस दिशा में किया गया है उससे तथ्य सामने आते हैं कि प्राकृतिक आपदाओं से गुजरे लोग कई तरह के मानसिक तनावों से ग्रस्त होते हैं।

भारत की प्राकृतिक आपदाओं के प्रति पहलों को ध्यान में रखते हुए ही विश्व स्तर पर उसकी अलग पहचान बनती जा रही है। यही कारण है कि भारत को आगामी वर्ष 2020 के लिए सर्वसम्मति से ग्लोबल फेसिलिटी फॉर डिजास्टर रिडक्शन एंड रिकवरी (जीएफडीआरआर) का सह अध्यक्ष चुना गया है। जीएफडीआरआर एक वैश्विक साझेदारी है। यह विश्व भर में प्राकृतिक आपदा जोखिम चुनौतियों से निपटने के लिए उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने वाला अनुदान पोषण क्रियाविधि यानी ग्रांट फंडिंग मैकेनिज्म है। इसका प्रबंधन विश्व बैंक के द्वारा किया जाता है। यह विकासशील देशों को प्राकृतिक आपदाओं, जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिमों को समझने में सहायता करता है। यह वर्तमान में 400 से अधिक स्थानीय, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, क्षेत्रीय सहयोगियों के साथ जुड़कर विकासशील देशों को आपदा जोखिम ज्ञान और साक्षरता, वित्तीय सहायता और तकनीकी सहायता देता है।

कई विकसित देशों में प्रायः कीटनाशकों के छिड़काव के माध्यम से मच्छरों को नियंत्रित किया जाता है, लेकिन वहां किसी प्राकृतिक आपदा के आ जाने से यदि छिड़काव नियमित नहीं हो पाता तो रोगवाहक मच्छरों की आबादी अनियंत्रित हो जाती है। जैसे एक शोध के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों में बाढ़ या बारिश के बाद वेस्ट नाइल जैसी वेक्टर जनित बीमारियां फैल सकती हैं। भारत में भी केरल में आई भीषण के बाद चूहे से फैलने वाले बुखार लेप्टोस्पायरोसिस से कई लोग मरे थे।

प्राकृतिक आपदाओं के बाद रोगों के फैलने का एक और बड़ा कारण लोगों और पशुओं के सड़ते शव भी होते हैं। हांलाकि शवों से बीमारियों के जोखिम बहुत कम होते हैं, क्योंकि आपदा प्रबंधन के दौरान सबसे पहले शवों को जलाने या गड़ाने की व्यवस्था पहले ही कर दी जाती है। फिर भी यह पाया गया है कि यदि हैजा या ईबोला जैसे कुछ विशेष संक्रमणों के कारण मौतें नहीं हुई हैं, तब तक यह संभव नहीं है कि वे शव किसी बीमारी के प्रकोप का स्रोत बन सकेंगे।

प्राकृतिक आपदाओं के बाद अक्सर लोगों के सामने ताजे और पौष्टिक भोजन की कमी की समस्या भी आती है, इससे विशेषतौर पर वेकुपोषण और कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली के शिकार हो जाते हैं। बाढ़ आदि के बाद जलाशयों में हानिकारक कीटनाशक और कई और भी रसायन मिल जाते हैं और बुरी तरह प्रदूषित हो जाता है। ऐसे में आपदाग्रस्त क्षेत्रों में स्वच्छ पेयजल की सीमितता और उचित स्वच्छता व्यवस्था की कमी से भी संक्रमण और जठरांत्र संबंधी बीमारियां जैसे दस्त, हेपेटाइटिस और कई अन्य जीवाणुजनित रोगों का खतरा दूषित जल के सीधे संपर्क में आने से फैल जाता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए जो भी राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय प्रयास किए जा रहे हैं, उनमें स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों को उठाने की पुरजोर कोशिशें की जानी होंगी। इस दिशा में भी गंभीरता से सोचने और प्राकृतिक आपदाओं से निपटने वाले अवसंरचनात्मक ढांचों में इसको शामिल करने की महती आवश्यकता है।

प्राकृतिक आपदाओं को ध्यान में रखते हुए ही भारत ने एक अंतरराष्ट्रीय साझेदारी के रुप में द कोलिएशन फॉर डिजास्टर रेजिलिएंट इन्फ्रास्ट्रक्चर (सीडीआरआई) की स्थापना की पहल की है। यह विकसित और विकासशील देशों को जलवायु और आपदा मुक्त लचीले बुनियादी ढांचे के निर्माण में सहयोग प्रदान करेगी। 27 जून, 2019 को भारत ने जी-20 के ओसाका समिट के दौरान ग्लोबल कोएलिशन फॉर डिजास्टर रेसिलिएंट इंफ्रास्ट्रक्चर के गठन के विषय पर चर्चा की गई थी।

भारत की प्राकृतिक आपदाओं के प्रति पहलों को ध्यान में रखते हुए ही विश्व स्तर पर उसकी अलग पहचान बनती जा रही है। यही कारण है कि भारत को आगामी वर्ष 2020 के लिए सर्वसम्मति से ग्लोबल फेसिलिटी फॉर डिजास्टर रिडक्शन एंड रिकवरी (जीएफडीआरआर) का सह अध्यक्ष चुना गया है। जीएफडीआरआर एक वैश्विक साझेदारी है। यह विश्व भर में प्राकृतिक आपदा जोखिम चुनौतियों से निपटने के लिए उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने वाला अनुदान पोषण क्रियाविधि यानी ग्रांट फंडिंग मैकेनिज्म है। इसका प्रबंधन विश्व बैंक के द्वारा किया जाता है। यह विकासशील देशों को प्राकृतिक आपदाओं, जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिमों को समझने में सहायता करता है। यह वर्तमान में 400 से अधिक स्थानीय, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, क्षेत्रीय सहयोगियों के साथ जुड़कर विकासशील देशों को आपदा जोखिम ज्ञान और साक्षरता, वित्तीय सहायता और तकनीकी सहायता देता है। यह सेंडाई फ्रेमवर्क फॉर डिजास्टर रिस्क रिडक्शन के क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रों को सहायता प्रदान करता है। इसका सचिवालय वाशिंगटन डीसी में है और इसके सेटेलाइट कार्यालय ब्रुसेल्स और टोक्यो में हैं। इसकी अध्यक्षता करने वालों में शामिल होने वाले संगठनों में एसीपी यानी अफ्रीका कैरेबियन एंड पेसिफिक ग्रुप ऑफ स्टेट्स, यूरोपीय संध और विश्व बैंक शामिल हैं।

आशा है इन सभी विश्वस्तरीय संगठनों में प्राकृतिक आपदाओं से जुड़े स्वास्थ्य मुद्दों पर भी गम्भीरता से ध्यान दिया जाएगा।

pragyamaitrey@gmail.com

जैव कारखाने

सतत विकास के महत्वपूर्ण अंग

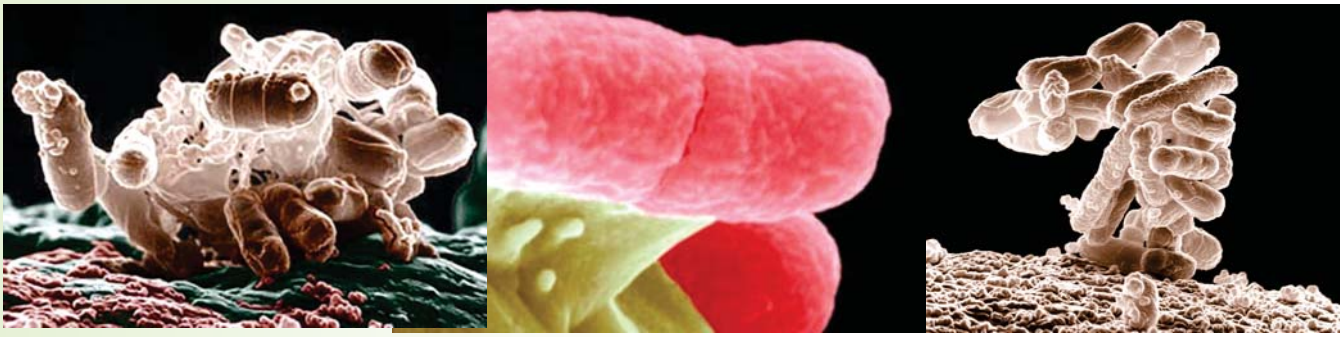

प्रज्ञा गौतम

प्रज्ञा गौतम ने विगत वर्षों में तेजी से विज्ञान लेखन में अपनी पहचान बनाई है। आपने विज्ञान प्रगति तथा विज्ञान कथा में नियमित लेखन किया। आपने बॉटनी में स्नातकोत्तर तक शिक्षा प्राप्त की तथा विज्ञान शिक्षक के रूप में अपना कॅरियर शुरू किया। वैज्ञानिक आधार पर लेखन करने में आपको महारत हासिल है। गहरी वैज्ञानिक दृष्टि और साहित्यिक अभिरुचि के चलते आपकी रचनाएँ मुक्ता, अहा जिंदगी, कादम्बिनी आदि में प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान में आप कोटा, राजस्थान में निवासरत हैं।

सतत विकास की अनिवार्य शर्त यह है कि विविध रसायनों का औद्योगिक उत्पादन पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए किया जाये। जैविक प्रक्रम द्वारा किसी पदार्थ का उत्पादन इसी दिशा में एक कदम है। खाद्य और पेय पदार्थों के उत्पादन के लिए सूक्ष्म जीवों का प्रयोग हजारों वर्षों से हो रहा है। आज आधुनिक जैव-तकनीकी के उपयोग ने इस क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है। जब किसी सजीव तंत्र (सूक्ष्म जीव, जंतु, पादप इत्यादि) में आनुवंशिक परिवर्तन करके उसका उपयोग औद्योगिक रूप से किसी वांछित पदार्थ के उत्पादन में किया जाता है तो इसे जैव फैक्ट्री की संज्ञा दी जाती है। ये वांछित पदार्थ अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे कोई विशिष्ट प्रोटीन, तेल या मेटाबोलाइट्स। सूक्ष्म जीव अपनी उपापचयी प्रक्रियाओं के दौरान भी अनेक रसायनों का निर्माण करते हैं, जैव तकनीकी के प्रयोग से इन रसायनों का निर्माण उच्च स्तर पर किया जा सकता है।

औद्योगिक रूप से एंजाइम, वैक्सीन, औषधियां जैव ईंधन का उत्पादन करने के लिए इस क्षेत्र में निरंतर शोध हो रहे हैं। वैज्ञानिक इन जैविक कारखानों को विभिन्न पदार्थों के औद्योगिक उत्पादन के लिए एक स्वच्छ विकल्प के रूप में देख रहे हैं। वास्तव में इन जैविक कारखानों में मनोवांछित पदार्थों का उत्पादन पर्यावरण को हानि पहुंचाये बिना कम लागत में किया जा सकता है। वर्तमान में जीवाणुओं की विभिन्न जातियां, शैवाल, यीस्ट, कीट, स्तनधारी जीव और पादप तंत्र इस कार्य के लिए प्रयुक्त किए जा रहे हैं। किसी विशिष्ट प्रोटीन या एंजाइम के उत्पादन के लिए कोई जीन विभिन्न सजीव तंत्रों में स्वयं को प्रकट कर सकता है किन्तु सजीव तंत्र का चयन करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना बेहद आवश्यक है। वह तंत्र समुचित मात्रा में, सुरक्षित तरीके से पदार्थ विशेष का उत्पादन करने में सक्षम हो और वह भी कम लागत में। ऐसा कोई तंत्र नहीं है जो सभी प्रकार के पदार्थों के उत्पादन के लिए उपयुक्त माना जाता हो। किसी सजीव तंत्र का चयन करते समय बहुत सारी व्यावहारिक बातें ध्यान में रखी जाती हैं जैसे उपयोग की दृष्टि से उत्पाद सुरक्षित हो, उच्च लब्धि, भण्डारण और शोधन में सुविधाजनक,और पर्यावरण के लिए सुरक्षित हो।

जीन तकनीकी का प्रयोग

किसी प्रोटीन के संश्लेषण के लिए सम्बंधित जीन को उपयुक्त सजीव तंत्र में डालना एक जटिल और अनेक चरणों में संपन्न होने वाला कार्य है। सर्वप्रथम वांछित जीन का चयन किया जाता है। इसके लिए माइक्रोऐरे, जीन सिक्वेंसिंग जैसी विधियाँ प्रयोग में ली जाती हैं। जीन को कोशिका के DNA से पृथक कर इसकी अनेक कॉपियां बना ली जाती हैं। कई बार कृत्रिम रूप से संश्लेषित जीन का भी प्रयोग किया जाता है। इस जीन को किसी वाहक की (वायरस, प्लास्मिड) सहायता से या सीधे ही (माइक्रोइंजेक्शन, इलेक्ट्रोपोरेशन और बायोलिस्टिक द्वारा) उपयुक्त सजीव तंत्र में प्रविष्ट करा दिया जाता है।

उपयुक्त सजीव तंत्र का चयन

किसी सजीव तंत्र का चयन का चयन करते समय उनकी विशेषताओं का विश्लेषण आवश्यक है। चिकित्सकीय उपयोग के लिए पुनर्योजी प्रोटीन्स का उत्पादन एस्चेरिचिया कोलाई जीवाणु में बहुत पहले से किया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त यीस्ट की विभिन्न प्रजातियों और चाइनीज हेम्सटर की अंडाशय कोशिकाओं का भी इस कार्य के लिए उपयोग किया जाता रहा है। वर्तमान समय में पादपों को विभिन्न पदार्थों के उत्पादन के लिए सर्वाधिक सुरक्षित और सुविधाजनक तंत्र माना जा रहा है और भविष्य में शोध के लिए यह एक आकर्षक क्षेत्र है। आइये, इन जैविक कारखानों की खूबियों और कमियों पर डालते हैं एक नजर-

जीवाणु

पुनर्योजी प्रोटीन्स (वैक्सीन हेतु) और एंजाइम्स के औद्योगिक उत्पादन के लिए ई. कोलाई का बहुत अधिक उपयोग किया गया है। यह जीवाणु मनुष्य की आंत में पाया जाता है। इसका संवर्धन कृत्रिम माध्यम में आसानी से किया जा सकता है। संवर्धन में आसानी और उच्च उत्पादन क्षमता के कारण विगत वर्षों में इस पर सर्वाधिक शोध कार्य हुआ है। किन्तु इसके उपयोग की कुछ सीमाएँ हैं, जैसे इसमें संश्लेषित प्रोटीन का पुनर्गठन और उसमें बदलाव बहुत कठिन है। इसके अतिरिक्त जीवाणु द्वारा उत्पन्न विष (एंडोटोक्सिन) को पृथक करना भी महंगा और श्रमसाध्य कार्य है। ई-कोलाई के स्थान पर वर्तमान में अहानिकारक फूड ग्रेड बैक्टीरिया जैसे लैक्टोकोकस और लैक्टोबेसिलस का उपयोग किया जा रहा है।

कवक

यीस्ट की अनेक प्रजातियों का उपयोग हेपेटाइटिस B वैक्सीन के निर्माण में किया जा रहा है। प्रोटीन की उच्च मात्रा के कारण

यीस्ट

ट्राइकोडर्मा और एस्परजिलस कवकों का प्रयोग भी वैक्सीन निर्माण में किया गया है ।ये कारखाने प्रोटीन अभिव्यक्ति में दक्ष हैं और इनमें संश्लेषण के बाद प्रोटीन को आसानी से पुनर्गठित भी किया जा सकता है। हालाँकि मानव निर्मित जटिल प्रोटीन्स केऔ ोगिक उत्पादन में कुछ व्यावहारिक बाधाएं हैं क्योंकि इसमें N- और O-लिंक्ड प्रोटीन -ओलिगोसैकेराइड्स (शर्करा) आबंध मनुष्य से भिन्न प्रकार के होते हैं।

कीट कोशिकाएं

कीट कोशिकाओं में जटिल मानव प्रोटीन्स को निर्मित करने योग्य मशीनरी होती है। वायरस जो कीटों को संक्रमित करते हैं किन्तु मानव के लिए सुरक्षित होते हैं, जीन वाहक के रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण 2007 में प्रथम बार कीट कोशिकाओं में एंटी- कैंसर वैक्सीन बनाई गयी। लेकिन यहाँ पर भी प्रोटीन पुनर्गठन और सीमित ग्लाइको-साइलेशन की समस्याएं हैं।

स्तनधारी जीवों की कोशिकाएं

वैक्सीन उत्पादन के लिए ये श्रेष्ठ हैं क्योंकि इनमें उपरोक्त दोनों समस्याएँ नहीं हैं। चाइनीज हेमस्टर के अंडाशय की कोशिकाओं और साइरियनहेमस्टर की किडनी कोशिकाओं का उपयोग औषधीय प्रोटीन्स के औद्योगिक निर्माण में किया जा रहा है। स्तनधारी कोशिकाओं को जटिल पोषण माध्यम में ही संवर्धित किया जा सकता है जो निम्न जीवों के संवर्धन की तुलना में काफी महंगा पड़ता है। इन कोशिकाओं के मनुष्य को संक्रमित करने वाले रोगाणुओं से संक्रमित होने की आशंका भी सर्वाधिक रहती है।

ट्रांसजीनिक जंतु

ट्रांसजीनिक खरगोश, चूहे, सूअर, और गाय का उपयोग पुनर्योजी प्रोटीन के उत्पादन में किया गया है। सूअर के रक्त में मानव हीमोग्लोबिन और हह्मोन्स का संश्लेषण किया जा चुका है। सूअर के रक्त से इन प्रोटीन्स का परिशोधन जटिल और बहुत महंगा कार्य है। हालाँकि स्तनधारियों जैसे बकरी, भेड़ और गाय आदि की स्तन ग्रंथियों में मनुष्य के α1-एंटीट्रिप्सिन का सफलतापूर्वक उत्पादन किया गया है। अभी यह क्षेत्र अपनी शैशव अवस्था में ही है। लागत, समय और श्रम की दृष्टि से देखें तो ट्रांसजीनिक जीव औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं हैं।

पादप

निरंतर हो रही शोधों से यह अब यह साबित हो गया है कि पुनर्योजी प्रोटीन्स के वृहत मात्रा में उत्पादन के लिए पादप प्रभावशाली और सस्ता विकल्प हैं। 1990 में प्रथम बार तम्बाकू के पादप में ह्यूमन सीरम एल्ब्यूमिन का उत्पादन किया गया। पादप आधारित प्रोटीन उत्पादन की अनेक खूबियाँ हैं जैसे- पादपों को संक्रमित करने वाले रोगाणु मनुष्य को संक्रमित नहीं करते। पादपों में अनेक प्रकार के प्रोटीन सफलतापूर्वक संश्लेषित किए जा सकते हैं जैसे औद्योगिक एंजाइम, रक्त प्रोटीन, साइटोकाइनिन्स, वृद्धि हह्मोन्स, औषधीय उपयोग के लिए एंटीबाडीज और वैक्सीन आदि। ट्रांसजीनिक पादपों के कोशिकांगों में

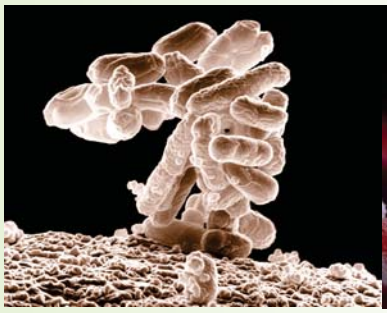

ई-कोलाई

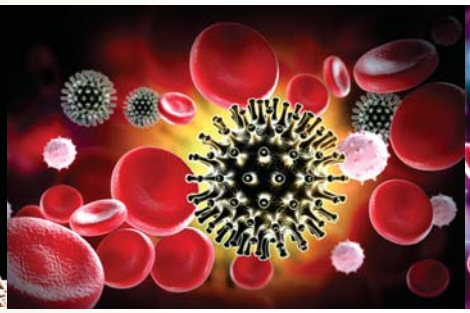

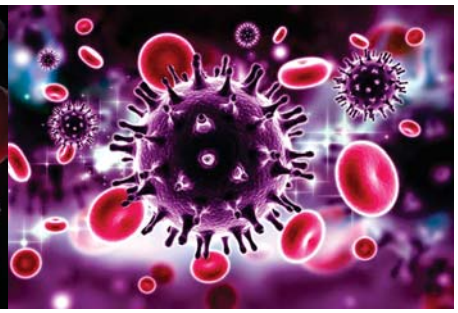

कीट कोशिकाएं

स्तनधारी कोशिकाएं

जीन अभिव्यक्ति के लिए समुचित वातावरण होता है। प्रोटीन में वांछित बदलाव और पुनर्गठन करने की क्षमता स्तनधारी कोशिकाओं की मशीनरी के समान होती है। पादपों द्वारा उत्पादित प्रोटीन मानव उपयोग की दृष्टि से सुरक्षित होते हैं।

ट्रांसजीनिक पादपों में प्रोटीन उत्पादन के लिए वांछित जीन को पादप के जीनोम (केन्द्रकीय या हरित लवक में स्थित जीनोम) से संलग्न कर दिया जाता है। प्रोटीन उत्पादन के लिए पत्तियों और बीजों के ऊतक उपयुक्त समझे जाते हैं क्योंकि पत्तियां और बीज प्रोटीन का अच्छा स्त्रोत होते हैं। बीजों में उच्च तापमान परास में लम्बे समय तक प्रोटीन सुरक्षित रखे जा सकते हैं। पादपों में प्रोटीन उत्पादन की लागत ई। कोलाई की अपेक्षा दस से पचस गुना कम आती है। यद्यपि सीमित मात्रा में ट्रांसजीनिक पादप जातियों की उपलब्धता, पादप उगाने के लिए एक बड़े क्षेत्र की आवश्यकता आदि ऐसे कारण हैं, जो पादपों के उपयोग को सीमित कर देते हैं। वर्तमान में लक्ष्य जीन अभिव्यक्ति के लिए लांच वायरस वेक्टर का उपयोग किया जाता है। प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक जीन को पादप वायरस के द्वारा पादप में डाला जाता है। वाहक से रोग उत्पन्न करने वाले जीन हटा दिए जाते हैं। इस तकनीक से ट्रांसजीनिक पादप विकसित करने में लगा श्रम और समय बच जाता है। वाहक के रूप में टोबेको मोज़ेक वायरस, काऊ पी मोज़ेक वायरस, और एग्रोबैक्टीरियम ट्युमिनीफेरेंस में उपस्थित प्लास्मिड का बहुत उपयोग किया जा रहा है। (प्लास्मिड जीवाणु में उपस्थित एक अतिरिक्त गोलाकार DNA होता है जिसमें अपनी कापियां बनाने की क्षमता होती है।)

बायोफैक्ट्री आधारित विभिन्न उद्योग

चिकित्सा क्षेत्र आधारित रसायनों का उत्पादन

चिकित्सा क्षेत्र के लिए मुख्य रूप से वैक्सीन, एंटीबाडीज, हॉर्मोन, और रोग नियंत्रक रसायनों का उत्पादन किया जाता है।

वैक्सीन उत्पादन के लिए एंटीजन (रोगाणु प्रोटीन) का निर्माण करने वाले जीन को उपयुक्त सजीव तंत्र में डाला जाता है। वैक्सीन उत्पादन के लिए सामान्यतः फूड ग्रेड जीवों (GRAS स्टेटस) का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की वैक्सीन सुरक्षित होती है और इसकी लागत भी कम आती है। फूड ग्रेड वैक्सीन सीधे मुख द्वारा ली जा सकती हैं और इनमें महंगे परिशोधन की आवश्यकता नहीं होती। फूड ग्रेड जीवों में लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया, बेसिलस सबटिलिस, यीस्ट, शैवाल, रेशम कीट और पादपों का प्रयोग किया जाता है।

बे. सबटिलिस जीवाणु विपरीत परिस्थितियों में अपने चारों ओर एक मोटा आवरण बना कर एंडोस्पोर बनाता है। ये एंडोस्पोर बायोफैक्ट्री और डिलीवरी वाहन दोनों का कार्य करते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण यीस्ट कोशिकाओं को भी बायोफैक्ट्री और डिलीवरी वाहन के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। हिपेटाइटिस बी वैक्सीन (HBV) और टेमी फ्लू दवायीस्ट आधारित ही है। क्लेमीडोमोनास एक सूक्ष्म एक कोशिकीय शैवाल है। इसकी अनेक जातियों का उपयोग प्लास्मोडियम (मलेरिया परजीवी) के विरुद्ध वैक्सीन का विकास करने में किया गया है इस वैक्सीन को भी सीधे ही मुख द्वारा लिया जा सकता है।

वर्तमान में फसली पादपों को वैक्सीन उत्पादन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना जा रहा है। प्रथम पादप आधारित वैक्सीन गाजर के पादप में गौचेर डिजीज के लिए विकसित की गयी थी। वर्तमान में हैजा के लिए (चावल में), HIV&1 के लिए (गाजर में), HBV, H3N2 (स्वाइन फ्लू) वायरस, न्यू कैसल वायरस (मक्का में), रेबीज (पालक में) वैक्सीन विकसित की गयी हैं। तम्बाकू के पादप में स्तन कैंसर और रक्त कैंसर के लिए वैक्सीन निर्मित कर वैज्ञानिकों ने इसे जीवन रक्षक पादप बना दिया है।

रेशम कीट (बोम्बिक्स मोराइ) के प्यूपा में उपस्थित प्रोटीन फूड ग्रेड श्रेणी में आते हैं। सिल्क प्रोटीन को खाने योग्य माना गया है। रेशम कीट में सर्वप्रथम मानव α- इंटरफेरोन का संश्लेषण किया गया। ट्रांसजीनिक रेशम कीट में बहुत से रोगों के लिए वैक्सीन विकसित किए गये हैं। जैसे ग्रास कार्प रेओवायरस और कैनाइन पार्वोवायरस के विरुद्ध वैक्सीन। इसके अतिरिक्त, गैस्ट्रिक अलसर और कैंसर के विरुद्ध वैक्सीन भी रेशम कीट में विकसित किए गये हैं। इसमें अल्झिमर रोग के लिए फ्यूज़न प्रोटीन और डायबिटीज के लिए इन्सुलिन का निर्माण भी किया गया है।

रेशम कीट (बोम्बिक्स मोराइ) के प्यूपा में उपस्थित प्रोटीन फूड ग्रेड श्रेणी में आते हैं। सिल्क प्रोटीन को खाने योग्य माना गया है। रेशम कीट में सर्वप्रथम मानव α- इंटरफेरोन का संश्लेषण किया गया। ट्रांसजीनिक रेशम कीट में बहुत से रोगों के लिए वैक्सीन विकसित किए गये हैं। जैसे ग्रास कार्प रेओवायरस और कैनाइन पार्वोवायरस के विरुद्ध वैक्सीन। इसके अतिरिक्त, गैस्ट्रिक अलसर और कैंसर के विरुद्ध वैक्सीन भी रेशम कीट में विकसित किए गये हैं। इसमें अल्झिमर रोग के लिए फ्यूज़न प्रोटीन और डायबिटीज के लिए इन्सुलिन का निर्माण भी किया गया है।

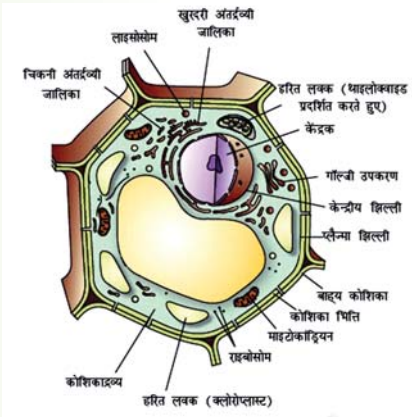

पादप कोशिका

रेशम कीट

गये हैं। इसमें अल्झिमर रोग के लिए फ्यूज़न प्रोटीन और डायबिटीज के लिए इन्सुलिन का निर्माण भी किया गया है।

सन 2010 से 2014 के मध्य जैव तकनीकी के क्षेत्र में त्वरित विकास हुआ है। वैक्सीन के अलावाकिसी रोग के विरुद्ध प्रतिजैविक पदार्थ (एंटी बॉडीज) और हॉर्मोन उत्पादन में खासी प्रगति हुई है। इन जटिल प्रोटीन्स के निर्माण के लिए पादप प्रभावशाली तंत्र सिद्ध हुए हैं।

वर्तमान में पहले से उपलब्ध ज्यादातर एंटीबायोटिक्स के निष्प्रभावी हो जाने के कारण नवीन एंटीबायोटिक्स की खोज और व्यावसायिक उत्पादन आवश्यक हो गया है। अभी हाल ही में विकसित एंटीबायोटिक टिक्सोबैक्टिन सुपर बग के विरुद्ध प्रभावी है। इसका प्राकृतिक रूप से उत्पादन मिट्टी के जीवाणुओं में किया जा रहा है।

खाद्य, बायो डीजल, पर्यावरण शोधन और अन्य उद्योगों के लिए एंजाइम उत्पादन

जीवाणुओं और यीस्ट का उपयोग बहुत पहले से खाद्य और पेय पदार्थों के उत्पादन में किया जा रहा है। इनमें उपस्थित एंजाइम क्रिया द्वारा डेयरी उत्पाद और पेय पदार्थों में सुगंध और स्वाद उत्पन्न किया जाता है। यीस्ट की आनुवंशिक रूप से परिवर्तित जातियां एंजाइम और विटामिन D की उच्च उत्पादन क्षमता युक्त हैं। जैव तकनीकी की सहायता से यीस्ट की एंजाइम उत्पादन क्षमता कई गुना बढ़ा कर औद्योगिक रूप से एथेनॉल, ब्यूटेनोल, और ग्लीसरॉल का उत्पादन किया जा रहा है।

घरेलू और औद्योगिक अपशिष्ट का एंजाइमों द्वारा अपघटन करके शोधन किया जाता है। यीस्ट प्रजातियों द्वारा उत्पादित एंजाइम लाइपेज की मात्रा को बढ़ा कर इन प्रजातियों का उपयोग प्रदूषित जल के उपचार में किया जाता है।

अल्फा एमाइलेज एंजाइम

विविध खाद्य फसलों जैसे मक्का, और सोयाबीन का उपयोग औद्योगिक एंजाइम उत्पादन के लिए उपयुक्त माना जाता है क्योंकि इनके बीज आकार में बड़े होते हैं और प्रोटीन संग्रह करते हैं। खाद्य, वस्त्र, कागज, और ऊर्जा आदि उद्योगों के लिए व्यावसायिक रूप से एंजाइम (अल्फ़ा एमाइलेज, लैकेज, सेलोबायोज आदि) उत्पादन के लिए इन फसली पादपों का उपयोग किया जाता है। α-एमाइलेज का उपयोग खा। उद्योग और बायो ईंधन उत्पादन में किया जाता है। यह एंजाइम लिग्निन और सेल्यूलोज को शर्करा और फिर अल्कोहल में बदल देता है।

सूक्ष्म शैवाल बड़ी मात्रा में वसा का संग्रह करते हैं जिनमें ट्राइग्लिसराइड (TAGs) और पाली अनसेच्युरेटेड फैटी एसिड्स (PUFA) शामिल हैं। TAGs को पोषक खाद्य में और PUFA को बायो डीजल में परिवर्तित किया जा सकता है। एंजाइम जो इन वसाओं के संश्लेषण के लिए आवश्यक हैं, के उत्पादन को जीन तकनीकी द्वारा इन शैवालों में कई गुना बढ़ा दिया जाता है जिससे वसाओं का संग्रह भी कई गुना बढ़ जाता है। इस वसा का उपयोग पोषकों और बायो डीजल के उत्पादन में किया जा सकता है। सूक्ष्म शैवालों में अनेक प्रकार के एंजाइमों का व्यावसायिक उत्पादन किया जा सकता है जिनको दवा, पोषक खाद्य और पर्यावरण शोधक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

विविध खाद्य फसलों जैसे मक्का, और सोयाबीन का उपयोग औद्योगिक एंजाइम उत्पादन के लिए उपयुक्त माना जाता है क्योंकि इनके बीज आकार में बड़े होते हैं और प्रोटीन संग्रह करते हैं। खाद्य, वस्त्र, कागज, और ऊर्जा आदि उद्योगों के लिए व्यावसायिक रूप से एंजाइम (अल्फ़ा एमाइलेज, लैकेज, सेलोबायोज आदि) उत्पादन के लिए इन फसली पादपों का उपयोग किया जाता है। α-एमाइलेज का उपयोग खा। उद्योग और बायो ईंधन उत्पादन में किया जाता है। यह एंजाइम लिग्निन और सेल्यूलोज को शर्करा और फिर अल्कोहल में बदल देता है।

कृषि क्षेत्र के लिए पीड़कनाशी उत्पादन

फंगस प्रजातियों द्वारा निर्मित फाइटोटोक्सिन और जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न एंडोटोक्सिन प्रोटीन प्रभावशाली जैव खरपतवारनाशी और कीटनाशी हैं। मृदा जीवाणु (Bt) में एंडोटोक्सिन Cry और Cyt का व्यावसायिक उत्पादन किया जा रहा है। चावल में भी फंगसनाशी प्रोटीन का संश्लेषण किया गया है। इस प्रोटीन का संग्रह चावल की भूसी में होता है जिसे बाद में उप उत्पाद के रूप में अलग कर लिया जाता है।

बायो प्लास्टिक उत्पादन

अभी हाल ही में की गयी एक शोध के अनुसार जीवाणुओं का उपयोग कम लागत के बायोप्लास्टिक उत्पादन में किया जा सकता है। ई। कोलाई और स्यूडोमोनास जीवाणुओं को बचे हुए अनुपयोगी खा। तेलों (वेस्ट फ्राइंग आयल) पर पोषित कर पालीहाइड्रोक्सी-एल्केनोएट्स (PHAs) का कई गुना ज्यादा उत्पादन किया जा सकता है। PHAs जैव अपधटनीय प्लास्टिक है।

यद्यपि प्रोटीन, एंजाइम और अन्य रसायनों के उत्पादन के लिए सूक्ष्म जीवों का प्रयोग काफी पहले से हो रहा है, ट्रांसजीनिक जीवों पर भी सफलतापूर्वक प्रयोग किए गयेहैं किन्तु वर्तमान में फूड ग्रेड सूक्ष्म जीवों और पादपों को सर्वाधिक सुरक्षित और कार्यक्षम जैव कारखानों की संज्ञा दी जा रही है। विगत वर्षों में जैव -तकनीकी के साथ-साथ नैनो तकनीकी और जैव- भौतिकी के समावेश ने सूक्ष्म जीवों की पोषक माध्यम से कार्बन अवशोषण क्षमता को कई गुना बढ़ा दिया है जिससे इनकी उत्पादन क्षमता भी कई गुना बढ़ गयी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन 'जीवित' कारखानों ने अनेक रसायनों के औद्योगिक उत्पादन को सस्ता, आसान और पर्यावरण हितैषी बना दिया है।

pragyamaitrey@gmail.com

❐❐❐

अतीत

राम अवतार शर्मा

राम अवतार शर्मा पिछले कई वर्ष से विज्ञान व साहित्य लेखन में सक्रिय हैं। विज्ञान प्रगति में इनके कई ''विज्ञान गल्प'' प्रकाशित हुए हैं। विज्ञान व साहित्य पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में निरंतर लेखन कर रहे हैं। वर्तमान में ये ''मल्टीडिमेंसनल ऐजूकेशन टेक्निकल व रिसर्च सोसाइटी'' के बतौर विज्ञान लेखक सदस्य हैं। आप आगरा में निवास कर रहे है।

अगस्त 2093

प्रोफेसर ये देखो!

ये है 'मेथो' सेंसर,

ये एक करोड़ किलोमीटर की दूरी से ही किसी भी अंतरिक्षीय पिण्ड पर मेथेन व उसके यौगिकों की उपस्थिति का पता लगा सकता है।

और ये देखो!

ये है ''ओ थ्री'' सेंसर,

ये भी उतनी ही दूरी से किसी भी पिण्ड पर ओजोन, ऑक्सीजन, या उनके किसी यौगिक अथवा उनके ही समान किसी भी गैस या यौगिक की मात्रा व उपस्थिति की जाँच कर सकता है, इसी प्रकार प्रोफेसर 'वरूण तिवारी' अपने बनाए हुए सभी सेंसरों व डिवाइसों के बारे में अपने वैज्ञानिक मित्र के.पी. (कुमार पावन) स्वामी को बताते जा रहे थे व प्रोफेसर के.पी.स्वामी भी एकटक अपने मित्र की बातें सुनते जा रहे थे। दरअसल प्रोफेसर वरूण तिवारी एक प्रसिद्ध एक्सोबायोलॉजिस्ट होने के साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के अंतिरिक्ष यात्रापयोगी व अंतिरिक्ष खोजों के लिए उपयुक्त डिवाइसों व यंत्रों के आविष्कर्ता भी थे। वहीं उनके मित्र प्रोफेसर 'के.पी.स्वामी' रोबोटिक विज्ञान की दुनिया में एक जाना-पहचाना नाम थे। जिन्होंने रक्षा क्षेत्र, चिकित्सा, आपदा प्रबंधन, कृषि कार्य, यहां तक कि शिक्षा के क्षेत्र में भी योगदान देने के लिए विभिन्न प्रकार के आश्चर्यजनक रोबोट तैयार किए थे।

प्रोफेसर तिवारी बताते ही जा रहे थे।

ये देखो प्रोफेसर! ये डिवाइस मैंने खासतौर से पानी या पानी जैसी संरचना वाले अन्य किसी भी यौगिक का करोड़ों किलो मीटर दूर से ही अंतिरिक्ष में पता लगाने के लिए तैयार की है।

ये देखो..... एक मिनट? प्रोफेसर स्वामी ने प्रोफेसर तिवारी की बात को बीच में ही काटते हुए पूछा!

प्रोफेसर!

आपने जो मुझे बताया कि, आपको पृथ्वी से अन्य किसी अंतरिक्षीय पिण्ड पर साक्षात जीवन होने के प्रमाण मिले हैं, इसीलिए आपने वहां की यात्रा करने की अनुमति भी ली है, और इसीलिए आपने इन सारे डिवाइसों को ईजाद भी किया है, कि यात्रा सुगम बनी रहे।

तो आप मुझे ये बताइए कि, आप इतने पूरे विश्वास से कैसे कह सकते हैं कि वहां साक्षात जीवन मौजूद है?

कहीं आपकी यात्रा बेकार गई तो?

प्रोफेसर स्वामी ने प्रोफेसर वरूण तिवारी से प्रश्न पूछने के साथ ही साथ कुछ अंदेशा भी जताया।

प्रोफेसर तिवारी कुछ बोलते, उससे पहिले ही प्रोफेसर स्वामी फिर बोले!

अन्य ग्रहो, उपग्रहों आदि पर जीवन होने के अनुमान तो पूर्व में भी लगते रहे हैं, परन्तु कोई भी वैज्ञानिक प्रामाणिक तौर पर यह नहीं कह सका है, कि निश्चित ही पृथ्वी से अन्यत्र बाह्य अंतरिक्ष में कहीं जीवन मौजूद है? बल्कि ये भी नहीं प्रमाणित हुआ है, कि कहीं पूर्व में भी कभी

जीवन मौजूद था, या भविष्य में कभी उत्पन्न होगा?

ठहरो- ठहरो! आपके सभी सवालों के जवाब मैं देने जा रहा हूँ।

प्रोफेसर तिवारी बड़े ही धीरज के साथ बोले!

आपका प्रश्न बहुत ही उचित है मिस्टर स्वामी! इसी प्रकार के कुछ प्रश्नों का सामना मुझे पहले भी करना पडा था, जब मैं इस यात्रा के लिये अनुमति लेने गया था। लेकिन मेरे द्वारा दिखाये गये प्रमाण चिन्हों से सभी एकदम सन्तुष्ट हो गये व दूसरे जगत के प्राणियों (जीवों) से मिलने को आतुर दिखे।

वे कौन से प्रमाण चिन्ह हैं?

प्रोफेसर! सहसा एक लडकी की आवाज से प्रोफेसर तिवारी चौंक गये।

उन्होंने पूछा!

कौन हो तुम?

मोना! उसने जबाब दिया। फिर प्रोफेसर स्वामी से बोली!

मुझे तुम्हारे द्वारा यहाँ बुलाने के सिग्नल मिले और मैं यहाँ चली आयी, अब तो मै तुम्हारे टैस्ट में पास हो गयी?

तुम मेरे सभी टैस्ट मे पास हो मोना।

उन्होंने फिर प्रोफेसर तिवारी को बताया कि 'मोना' एक फीमेल रोबोट है, जो हूबहू लडकी जैसी ही दिखती है। जिसे मैंने केवल आपके कहने पर आपकी अंतरिक्ष यात्रा में सहयोगी के तौर पर तैयार किया है। ये न केवल सभी प्रकार के मौसम, गैसो व प्रचंड ताप व अति निम्न ताप को सह सकती है, बल्कि अंतरिक्ष यात्री को किसी भी आपदा से सुरक्षित रखकर पृथ्वी पर वापिस भी ला सकती है। ये विभिन्न प्रकार की जांचों में भी सहयोग कर सकती है। ये इस समय एक छात्रा की तरह प्रशिक्षण की अवस्था में है इस समय इसे जितना भी ज्ञान मिलेगा ये उतना ही ज्ञान एकत्रित करती जायेगी व सीखती जायेगी। इसमें इस समय की टॉप आर्टीफिशियल इंटेलीजेन्स (कृत्रिम बुद्धिमता) तकनीकी का इस्तेमाल किया गया है। इसलिये स्वज्ञान अर्जन की क्षमता भी इसमें भरपूर है। ये आपकी यात्रा में सभी प्रकार से सहयोग करेगी प्रोफेसर तिवारी।

फिर मोना से बोले!

प्रोफेसर तिवारी से मिलो मोना!

यह सुनते ही 'मोना' ने प्रोफेसर तिवारी की ओर हाथ बढाते हुये कहा,

हैलो मिस्टर तिवारी!

हाउ आर यू?

आई एम फाइन मिस मोना।

मिस मोना सुनते ही मोना के होठों पर मुस्कान थिरक आयी फिर बोली

प्रोफेसर तिवारी! मैं आपकी खोजों से 'प्रसादित' हूँ। 'प्रसादित' हूँ,

यह सुनते ही दोनो मित्र हँसने लगे, प्रसादित नहीं पगली, प्रभावित प्रोफेसर स्वामी ने मोना को समझाया।

ओह मेरा हिन्दी वाइस फॉन्ट शायद कुछ गडबड कर रहा है, अभी ठीक करती हूँ।

यह कहकर मोना ने अपनी आँखों के तारों को दो बार ऊपर की ओर घुमाया फिर बोली

प्रोफेसर्स! मैंने अपने हिन्दी व अंग्रेजी दोनो फॉन्टों की रिपेयरिंग कर ली है, अब मैं एकदम सही उच्चारण कर सकती हूं। तो तुम अब प्रोफेसर तिवारी से 'प्रसादित' नही होगी।

प्रोफेसर स्वामी के यह कहते ही तीनो हंसने लगे।

यही इसकी सबसे बडी विशेषता है, कि यह अपनी किसी दिक्कत व खराबी की मरम्मत स्वयं ही कर लेगी व अंतरिक्ष में भारहीनता होने पर भी इसके किसी भी यांत्रिक व तकनीकी सिस्टम के कार्य करने पर कोई भी प्रभाव नही पडेगा।

प्रोफेसर के.पी. स्वामी ने प्रोफेसर तिवारी को बताया। फिर प्रोफेसर तिवारी से बोले!

प्रोफेसर अब आप हमें उन चिन्हों के बारे में बताइये जिससे आप यह साबित कर सके कि पृथ्वी के बाहर भी अंतरिक्ष में जीवन मौजूद है, व फिर अपनी आगे की यात्रा के बारे मे बतायें। इस समय मोना भी यहाँ मौजूद है जिससे इसे भी आपके मिशन की जानकारी मिल जायेगी तो इसको भी यात्रा मे आपकी सहायता करने में सरलता होगी।

प्रोफेसर तिवारी ने मोना की तरफ देखा तो उसने भी हां मे सिर हिलाया , जिसे देखकर उनके चेहरे पर मुस्कान आ गयी।

सबसे पहले तो मै आपको धन्यवाद दूंगा, कि आपने मेरे लिये ''मोना'' जैसा अति उत्तम, समझदार व सहयोगी रोबोट तैयार किया है। प्रोफेसर स्वामी से बोले।

फिर आगे कहा- किसी भी अंतरिक्षीय पिण्ड पर जीव व जीवन होने के लिये लगभग वैसी ही स्थितियां होना अति आवश्यक है, जैसी स्थितियां आदि पृथ्वी से लेकर वर्तमान पृथ्वी पर होती आयी हैं। व परिवर्तन आदि होते आये है। सबसे पहले किसी भी पिण्ड पर जीवन होने के लिये उसका पृथ्वी के जैसा ही पार्थिव होना आवश्यक है, क्योंकि गैसों आदि के गोलों पर जीवन की संभावना न के बराबर है। महान वैज्ञानिक ओपैरिन के अनुसार किसी ग्रह उपग्रह पर जीवन के आरम्भ व जीव द्रव्य बनने के लिये आदि पृथ्वी जैसी दशाओ का बनना परम आवश्यक है। वायुमण्डल अपचायक होना चाहिये, अन्यथा कार्बनिक यौगिक नही बन सकते हैं या बनते ही इनका सड़ाव या किंवन हो जायेगा। कार्बनिक यौगिकों के क्रमिक संश्लेषण के लिये उपयुक्त ऊर्जा स्रोत भी होने चाहिये, आदि पृथ्वी पर सूर्य के प्रकाश की पराबैंगनी किरणों, बादलों की विद्युत तथा ज्वालामुखियों के ताप ने ऐसे ऊर्जा स्रोतों का कार्य किया। एक बार जीवन उत्पन्न हो जाने के बाद जीवन के अस्तित्व व विकास के लिये वातावरण का ऑक्सीकारक होना पराबैंगनी किरणों के हानिकारक प्रभाव से जीव धारियों की सुरक्षा होना व जैव संतुलन के लिये स्वपोषी व परपोषी दोनो ही प्रकार के जीवों का साथ-साथ होना आवश्यक है। इन सभी के साथ-साथ ही उस पिण्ड की अपने तारे से उचित दूरी व उचित गुरूत्वाकर्षण भी आवश्यक है। सभी को ध्यान में रखते हुए व आज की स्थितियों को भी देखते हुए हमारी टीम 'जो मेरे नेतृत्व में कार्य कर रही है' ने एक अन्तरिक्षीय ड्रोन उपग्रह विकसित किया। जो अन्तरिक्ष में जाकर स्वतः ही खोज-बीन करे व कहीं जीवन होने पर या जीवन की संभावना होने पर हमें सूचित करे। इस ड्रोन में हमने वे सभी सेंसर व युक्तियां प्रयोग की है, जो ऑक्सीजन या इसके जैसी ही किसी गैस, वायुमण्डल में

ओजोन या ओजोन जैसी ही किसी अन्य गैस की परत, जल की मौजूदगी व अन्य सभी जीवन के लिए आवश्यक दशाओं की जांच करके, हरा, पीला, या लाल सिग्नल इस स्क्रीन पर भेज सके। प्रोफेसर तिवारी ने स्क्रीन की तरफ उंगली करते हुए बताया।

फिर बोले!

'पीले' सिग्नल का मतलब है-खोज अभी जारी है,

'लाल' का मतलब-कोई संभावना नहीं।,

'हरे' का मतलब-पूरी संभावना है, मोना ने फुर्ती से जबाव दिया।

बिल्कुल सही मोना!

काफी समझदार हो तुम।

प्रोफेसर्स ने मोना को शाबासी दी।

प्रोफेसर तिवारी फिर बताने लगे! कि ग्यारह महीने व 16 पिण्डों की खोज-बीन के बाद हमें मंगल व बृहस्पति ग्रहों के बीच 'ल्यूनेट'(काल्पनिक नाम) नाम के एक छुद्र ग्रह पर जीवन होने के पूरे संकेत मिल गए। जीवन की संभावना वाले सभी सिग्नल्स पीले से धीरे-धीरे हरे हो गए। केवल गुरूत्वाकर्षण को लेकर थोड़ी दुविधा थी, क्योंकि इस पिण्ड का आकार पृथ्वी का 12वां भाग था, व गुरुत्व बल भी लगभग 12-14 वां भाग ही था। कम गुरुत्व बल होने पर भी जीवन? लेकिन अन्य प्रमाण इतने पुख्ता थे, कि अकेले इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। इसके तीन दिन बाद ड्रोन ने जो तस्वीरें भेजी, उन्हें देखकर सभी खुशी से उछल पड़े।

क.....क्यों ऐसा क्या था उन तस्वीरों में? प्रोफेसर स्वामी ने उतालेपन से पूछा!

उन तस्वीरों में ही तो वहाँ पर जीवन मौजूद होने के प्रत्यक्ष प्रमाण थे। यह कहते हुए प्रोफेसर तिवारी मेज की दराज से निकालकर तस्वीरें दिखाने लगे। दोनों ने देखा कि, वहाँ झाड़ियों जैसी वनस्पतियां स्पष्ट दिख रहीं थी। अगर वहाँ मानव जैसे जीव व अन्य प्रकार के जीव मौजूद हैं, तो वहाँ जाने पर आपको कोई खतरा भी हो सकता है? क्योंकि महान वैज्ञानिक 'स्टीफन हॉकिंग' ने भी चेताया है, कि बाहरी प्राणियों से मानव का संपर्क होने पर अंजाने में उन प्राणियों से पृथ्वी के मानव को खतरा भी हो सकता है। प्रोफेसर स्वामी ने अंदेशा जताया!

बिल्कुल! यही सोचकर तो हमें उन प्राणियों को कई हजार किलो मीटर से केवल मशीनों द्वारा ही देखने की व तीस मिनट से अधिक न ठहरने की अनुमति मिली है। और मैंने भी आपको 'मोना' जैसा रोबोट तैयार करने को कहा था, जो किसी भी परिस्थितियों से निकाल कर हमें सुरक्षित पृथ्वी पर वापिस ला सके।

वापिस ले आओगी न मोना?

प्रोफेसर तिवारी के यह पूछते ही, मोना ने हां में सिर हिलाया। तो फिर ठीक है! मोना आपके साथ रहेगी, मुझे उम्मीद है, कि आप पृथ्वी वासियों का एक नई दुनियां से जल्द ही परिचय कराऐंगे। यात्रा के लिए आपको शुभकामनाऐं।

कहकर प्रोफेसर के.पी.स्वामी ने अपने मित्र से विदा ली।

मोना तीन दिन के प्रशिक्षण पर चली गई। कुछ दिनों बाद

'प्रोफेसर वरूण तिवारी' मोना व अपनी टीम सहयोगी 'मिस. मानसी उपाध्याय' को साथ लेकर परमाणु ऊर्जा से चालित यान से एक महीने की 'ल्यूनेट' की यात्रा के लिए चल दिए। उन्होंने कई अत्याधुनिक मशीनें व उपकरण भी साथ ले लिए थे। उनकी यात्रा को अभी केवल पंद्रह दिन ही हुए थे, कि उनके स्क्रीन पर एक तस्वीर ड्रोन द्वारा भेजी गई, जो किसी जीवाणु का जीवाश्म लग रही थी। विश्लेषण करके मोना ने बताया, कि यह 'ल्यूनेट' की धरती की काफी गहराई की तस्वीर है, यह जीवाणु नहीं, बल्कि सरल रचना की झिल्ली जैसी प्रारम्भिक जीव कोशिका है। जैसी 3.5 अरब वर्ष पुरानी चट्टानों से पृथ्वी के वैज्ञानिकों को प्राप्त हुई थी। उन्होंने इन जीवाश्मों का नाम 'यूबैक्टीरियम आइसोलैटम' रखा था। इसका मतलब वहाँ उसी प्रकार जीवन विकसित हुआ है, जैसा कि आदि पृथ्वी पर हुआ था। मिस. मानसी ने चहकते हुए अनुमान लगाया। इसी प्रकार शोध, विश्लेषण आदि करते हुए, बाकी दिन भी निकल गए, और आखिर 'ल्यूनेट' के वातावरण में यान पहुँचा। मोना ने 'ल्यूनेट' के वातावरण का विश्लेषण करने के बाद बताया, कि यहाँ के वातावरण की गैसों की संरचना लगभग पृथ्वी जैसी ही है। फिर 500 किलोमीटर ऊपर से ही प्रोफेसर तिवारी की टीम ने अत्याधुनिक उपकरणों की सहायता से जो 'ल्यूनेट' की धरती पर देखा, तो वे सभी हैरान रह गए। वहाँ के मानव बिल्कुल पृथ्वी के मानवों के जैसे ही थे। वे घास-फूंस की बनी झोंपड़ियों में रह रहे थे, वे जानवरों द्वारा खेती कर रहे थे, उनकी खालों से बने वस्त्र पहन रहे थे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था, कि वे अपनी पृथ्वी से करोड़ों किलोमीटर दूर 'ल्यूनेट' की धरती देख रहे हैं, बल्कि उन्हें लगा कि वे अपनी ही पृथ्वी के अतीत को देख रहे हैं, उन्हें लगा कि वे टाइम मशीन द्वारा यात्रा करके इक्कीसवीं सदी से सीधे सिंधु घाटी सभ्यता में आ गए हैं। वे अपने अतीत को साक्षात देख रहे थे। विज्ञान फिल्मों, कथा व कहानियों में दर्शाये गए परग्रहियों के विचित्र चेहरों व कारनामों व उनका पृथ्वी पर हमले जैसी कल्पनाऐं कोरी निकली। उनसे किसी भी खतरे के डर की संभावना पूरी तरह खत्म हो गई थी। क्योंकि उनका विज्ञान अभी उतना उन्नत नहीं था। उनकी कमर के नीचे का हिस्सा कुछ अधिक भारी था, जिसका कारण मोना द्वारा कम गुरूत्व में जीवन जीने के लिए प्रकृति द्वारा किया गया परिवर्तन बताया गया। पृथ्वी से भिन्न कुछ जीव व वनस्पतियां भी वहां देखी गईं, लेकिन मानव चेहरे हुबहू पृथ्वी जैसे ही थे। वहाँ तीस मिनट ठहरना उनको काफी कम लगा, क्योंकि वहाँ तीस दिन ठहरा जा सकता था, अपने अतीत को और अधिक करीब से जानने के लिए। इसके बाद उनके यान ने कई निर्जन स्थानों, चट्टानों, नदी के किनारों आदि पर लैंडिंग करके, वहाँ की कई वस्तुओं के नमूने एकत्रित किए व तस्वीरें खींची व पृथ्वी वासियों को उनके अतीत से साक्षात परिचय कराने की सोच कर वापिस पृथ्वी पर आने के लिए प्रोफेसर वरूण तिवारी, मोना व मानसी के साथ 'ल्यूनेट' की धरती से उड़ान भर चुके थे। रास्ते में सभी चर्चा करते हुए आ रहे थे, कि अब जब भी कभी पृथ्वी के मानव को अपने अतीत को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा होगी, तो वह 'ल्यूनेट' की यात्रा के लिए चल देगा।

nijramagr@gmail.com

सिस्मिक इंजीनियरिंग

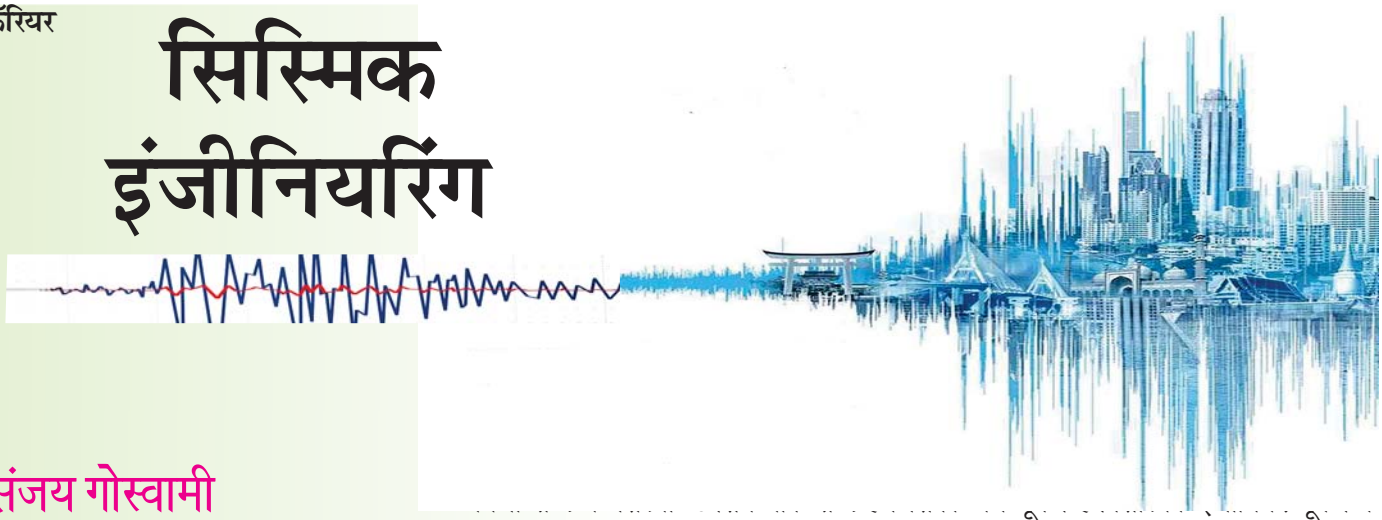

संजय गोस्वामी

संजय गोस्वामी विगत पंद्रह वर्षों से विज्ञान लेखन से जुड़े हैं आपने हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र में तीन सौ से अधिक कॅरियर लेख लिखे हैं जो विज्ञान विषयक होते हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' में वे विगत लगभग पांच वर्षों से शृंखलाबद्ध लिख रहे हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान लेख, विज्ञान समाचार, विज्ञान कविता, विज्ञान रपट, विज्ञान समीक्षा आदि का लेखन और प्रकाशन हुआ है। कई पुरस्कारों से सम्मानित संजय गोस्वामी हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, भा.प.अ. केन्द्र, मुंबई के कार्यकारी सदस्य हैं। आप इन दिनों मुंबई में रहकर हिन्दी विज्ञान पत्रिका में लेखन एवं संपादन से संबद्ध हैं।

परिमाण को आधार मानकर उसकी व्यापकता को मापते हैं। भूकंप के परिमाण को मापने की अनेक विधियां हैं।हमारी धरती मुख्य तौर पर चार परतों से बनी हुई है, इनर कोर, आउटर कोर, मैनटल और क्रस्ट। क्रस्ट और ऊपरी मैन्टल को लिथोस्फेयर कहते हैं। ये पचास किलोमीटर की मोटी परत, वर्गों में बंटी हुई है, जिन्हें टैकटोनिक प्लेट्स कहा जाता है। ये टैकटोनिक प्लेट्स अपनी जगह से हिलती रहती हैं लेकिन जब ये बहुत ज्यादा हिल जाती हैं, तो भूकंप आ जाता है। भूकंप एक विनाशकारी प्राकृतिक घटना है। भूकंप से होने वाले जोखिम का संबंध मृदा स्थितियों, भूवैज्ञानिक संरचना और संरचनात्मक गतिविधियों के साथ है, जिनका अध्ययन क्षेत्रीय आधार पर किया जाता है। भूकंप वैज्ञानिकों का काम भूकंपीय घटनाओं के स्रोत, स्वरूप और आकार का पता लगाना है जिससे विभिन्न एजेंसियों द्वारा उसका इस्तेमाल किया जा सके। प्राकृतिक रूप से आने वाले भूकंप विवर्तनिक भूकंप भी कहलाते हैं क्योंकि ये पृथ्वी के विवर्तनिक गुण से संबंधित होते हैं। भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदा के चलते प्रतिवर्ष देश-विदेश में लाखों लोग न सिर्फ बेघर हो जाते हैं, बल्कि सैकड़ों भूकंप पीड़ितों को अपने परिजनों को भी खोना पड़ता है। पृथ्वी के भूपटल में उत्पन्न तनाव का, उसकी सतह पर अचानक मुक्त होने के कारण पृथ्वी की सतह का हिलना या कांपना, भूकंप कहलाता है। भूकंप प्राकृतिक आपदाओं में से सबसे विनाशकारी विपदा है जिससे मानवीय जीवन की हानि हो सकती है। आमतौर पर भूकंप का प्रभाव अत्यंत विस्तृत क्षेत्र में होता है। भूकंप, व्यक्तियों को घायल करने और उनकी मौत का कारण बनने के साथ ही व्यापक स्तर पर तबाही का कारण बनता है। इस तबाही के अचानक और तीव्र गति से होने के कारण जनमानस को इससे बचाव का समय नहीं मिल पाता है। बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों के दौरान पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर 26 बड़े भूकंप आए, जिससे वैश्विक स्तर पर करीब डेढ़ लाख लोगों की असमय मौत हुई। यह दुर्भाग्य ही है कि भूकंप का परिणाम अत्यंत व्यापक होने के बावजूद अभी तक इसके बारे में सही-सही भविष्यवाणी करने में सफलता नहीं मिली है। इसी कारण से इस आपदा की संभावित प्रतिक्रिया के अनुसार ही कुछ कदम उठाए जाते हैं। इंजीनियरिंग की वह शाखा जिसके अंतर्गत भूकंप का अध्ययन किया जाता है, भूकंप इंजीनियरिंग कहलाती है और भूकंप इंजीनियरिंग का अध्ययन करने वाले इंजीनियर/वैज्ञानिक को इंजीनियरिंग भूकंप कहते हैं। भूकंप के समय एक हल्का सा झटका महसूस होता है। फिर कुछ अंतराल के बाद एक लहरदार या झटकेदार कंपन महसूस होता है, जो पहले झटके से अधिक प्रबल होता है। छोटे भूकंपों के दौरान भूमि कुछ सेकंड तक कांपती है, लेकिन बड़े भूकंपों में यह अवधि एक मिनट से भी अधिक हो सकती है। सन् 1964 में अलास्का में आए भूकंप के दौरान धरती लगभग तीन मिनट तक कंपित होती रही थी। नेपाल में आए विनाशकारी भूकंप को चार साल पूरे हो गए। 25 अप्रैल 2015 को भूकंप ने नेपाल को हिला दिया था। यह भूकंप नेपाल के लिए बहुत विनाशकारी था। 7.9 तीव्रता का था भूकंप। इसने लाखों परिवारों को विस्थापित करने के साथ-साथ देश की अर्थव्यवस्था को बुरी तरह से प्रभावित किया। इस भूकंप और इसके बाद आए झटकों ने काठमांडू सहित मध्य नेपाल को प्रभावित किया था तथा इस भूकंप में बारह हजार लोगों की जान गई थी और अरबों डॉलर की संपत्ति का नुकसान हुआ था। इसमें 22,000 लोगा घायल भी हुए थे। भूकंप के कारण धरती के कांपने की अवधि विभिन्न

कारणों जैसे अधिकेंद्र से दूरी, मिट्टी की स्थिति, इमारतों की ऊंचाई और उनके निर्माण में प्रयुक्त सामग्री पर निर्भर करती है। भूकंप इंजीनियरिंग में भूकंप रिकॉर्ड करना, भूकंप को सूचीबद्ध करना, भूकंप के प्रभावों का अवलोकन (macroseismology), पृथ्वी के आंतरिक गुणों का अध्ययन, भूकंपीय स्रोतों की भौतिक विशेषताओं का अध्ययन करना भूकंपीय खतरे और जोखिम का अनुमान, लगाना ऐसिस्मिक भवन, भूकंप प्रतिरोधी संरचनाएं का डिजाइन करना आदि विषय सम्मिलित हैं।

क्षेत्र

विज्ञान और भूकंप संबंधी पाठ्यक्रम इंटर डिसिप्लिनरी क्षेत्र है जिनमें भूकंप वैज्ञानिकों के साथ इंजीनियर एवं तकनीशियन, सिविल एवं संरचना इंजीनियर भी शामिल होते हैं जो कम्प्यूटरों, भौतिक विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिक, दूरसंचार और सिविल एवं संरचना इंजीनियरी जैसे विषयों में पारंगत होते हैं। भूकंप वैज्ञानिक और भूकंपों के दुष्प्रभाव से संरक्षण की अपेक्षा करने वाले लोगों के बीच हम भूकंप इंजीनियर को खड़ा पाते हैं जिसका यह दायित्व है कि वह नए भवनों के निर्माण में इस बात की पुख्ता व्यवस्था करे कि भवनों को भूकंप से नुकसान न हो। उसके काम का संबंध एक तरफ विश्व के विभिन्न भागों में भूकंपों के आकार और आवृत्ति के अनुमान के संदर्भ में भूकंप वैज्ञानिकों के साथ है तो दूसरी ओर वास्तुकारों, योजनाकारों और बीमा कंपनियों के साथ है। भूकंप विज्ञान/भूकंप इंजीनियरिंग संबंधी पाठ्यक्रम भूगोल और भौतिक विज्ञान विषयों से मिलकर बनते हैं।

अध्ययन

सिस्मोलॉजी इंजीनियर, भूकंप की तीव्रता मापने के लिए रिक्टर स्केल उपकरण का उपयोग करते हैं भूकंप की तीव्रता मापने के लिए रिक्टर स्केल का पैमाना इस्तेमाल किया जाता है। इसे रिक्टर मैग्नीट्यूड टेस्ट स्केल कहा जाता है। भूकंप की तरंगों को रिक्टर स्केल 1 से 9 तक के आधार पर मापता है। रिक्टर स्केल पैमाने को सन 1935 में कैलिफॉर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी में कार्यरत वैज्ञानिक चार्ल्स रिक्टर ने बेनो गुटेनबर्ग के सहयोग से खोजा था।

किसी भी दूरी फोकल 0 और 700 किमी के बीच के भूकंप की तरंगों के लिए और गहराई का विस्तार रिक्टर स्केल उपकरण के जरिए किया गया। क्योंकि भूकंप दोनों प्रकार के तरंगों, जो में और पृथ्वी के माध्यम से यात्रा, और सतह तरंगों, जो पृथ्वी के ऊपरवाला परतों के प्राकृतिक लहर गाइड का पालन करने के लिए विवश हैं उत्तेजित, दो परिमाण - एमबी (mb) और एमएस (MS) विकसित सूत्र के जरिए भूकंप तीव्रता का माप किया जाता है।

भूकंप तीव्रता का मानक सूत्र है-

$M_b = \log10(A/T) + Q(D,h)$,
$M_s = \log10 (A/T) + 1.66 \log10 (D) + 3.30$.

रिक्टर स्केल सामान्य रूप में लॉगरिथम के अनुसार काम करता है। जिसके अनुसार एक सम्पूर्ण अंक अपने मूल अर्थ के दस गुना अर्थ में व्यक्त किया जाता है। रिक्टर स्केल में यह वृद्धि तरंगो की ध्वनि को मापने के रूप में व्यक्त होती है। जहां M_b पी और M_s एस तरंग (माइक्रोन में) के आयाम है; T टी इसी अवधि में समय (सेकंड) है और Q क्यू (डी, ज) एक सुधार कारक D डी (डिग्री) है , केंद्र और लहर के बीच की दूरी,(किलोमीटर में) भूकंप की स्टेशन और फोकल गहराई के बीच की दूरी है। सूत्र के जरिए इस स्केल के अंतर्गत प्रति स्केल भूकंप की तीव्रता दस गुणा बढ़ जाती है और भूकंप के दौरान जो ऊर्जा निकलती है वह प्रति स्केल बत्तीस गुणा बढ़ जाती है। इसका सीधा मतलब यह हुआ कि तीन रिक्टर स्केल पर भूकंप की जो तीव्रता थी वह चार स्केल पर तीन रिक्टर स्केल का दस गुणा बढ़ जाएगी। रिक्टर स्केल पर भूकंप की भयावहता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि

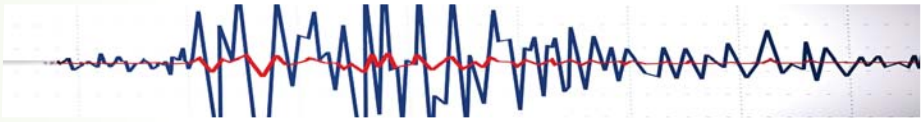

मैग्नीट्यूड स्तर	श्रेणी	प्रभाव
1.0 - 2.9	सबसे कम कंपन	इसका अहसास भी नहीं होता है केवल उपकरण पर दर्ज होता है,
3.0 - 3.9	मामूली एहसास	लेकिन नुकसान नहीं होता है लोगों को एहसास होता है
4.0 - 4.9	हल्का कंपन	लोगों को थोड़ा अधिक एहसास के साथ मामूली नुकसान
5.0 - 5.9	मध्यम कंपन	कमजोर इमारतों को नुकसान संभव
6.0 - 6.9	तेज कंपन	थोड़ा अधिक नुकसान संभव
7.0 &7.9	बहुत तीव्र कंपन	विनाशकारी और जान-माल का नुकसान बड़े पैमाने पर
8.0 - 8.9	अत्यधिक तीव्र कंपन	प्रलयकारी और बड़े पैमाने पर जान माल का नुकसान संभव
9.0 - 9.9	बहुत अत्यधिक तीव्र कंपन	पृथ्वी के बड़े हिस्से का नाश और प्रलय का साक्षत रूप
10.0 -	ऐतिहासिक	अनुमान से बाहर का विनाश

आठ रिक्टर पैमाने पर आया भूकंप साठ लाख टन विस्फोटक से निकलने वाली ऊर्जा उत्पन्न कर सकता है। भूकंप को मापने के लिए रिक्टर के अलावा मरकेली स्केल का भी इस्तेमाल किया जाता है। पर इसमें भूकंप को तीव्रता की बजाए ताकत के आधार पर मापते हैं। इसका प्रचलन कम है क्योंकि इसे रिक्टर के मुकाबले कम वैज्ञानिक माना जाता है। भूकंप के कारण होने वाले नुकसान के लिए कई कारण जिम्मेदार हो सकते हैं, जैसे घरों की खराब बनावट, खराब संरचना, भूमि का प्रकार, जनसंख्या की बसावट आदि। भूकंप इंजीनियरिंग की एक खास ब्रांच है। इससे जुड़े क्षेत्र में करियर की अपार संभावनाएं हैं।

नए शोध

भूकंप की वजह से अब तक दुनिया के कई देशों में तबाही आ चुकी है। हजारों लोग जान गंवा चुके हैं। इस आपदा का पूर्वानुमान लगाने लिए वैज्ञानिक लगातार कोशिश कर रहे हैं। इस बीच एक कंपनी ने ऐसा उपकरण बनाने का दावा किया है जो भूकंप आने से तीस सेकंड पहले उसकी चेतावनी देगा पिछले कुछ वर्षों में भूकंप की घटनाओं के चलते सैकड़ों लोगों को जान-माल का नुकसान उठाना पड़ा है। मगर अब इस प्राकृतिक आपदा से बचने के लिए ऐसा बेड लांच करने की तैयारी की जा रही है, जो भूकंप आने पर बेड पर सोये व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करेगा। अपनों को खोने के दर्द को समझते हुए अमेरिका के वैंग वेंक्सी नामक शख्स पिछले कुछ वर्षों से एक ऐसे बेड का आविष्कार करने में लगे हैं, जो भूकंप आने पर लोगों को इसके प्रभाव से सुरक्षित रखेगा। इस दिशा में पहल करते हुए वैंग वेंक्सी ने 2010 में भूकंपरोधी बेड के लिए पेटेंट कराया था, जिसे सुरक्षित बनाने के लिए वह लगातार काम कर रहे हैं। भूकंप की स्थिति में जान की सुरक्षा प्रदान करनेवाले इस बेड में वैंग वेंक्सी ने इमरजेंसी में काम आनेवाली सभी चीजें जैसे खाने का सामान, पानी और फर्स्ट ऐड जैसी चीजें रखने की व्यवस्था भी की है। भूकंप के दौरान आने वाली समस्याओं को बारीकी से समझते हुए इस बेड को ऐसे डिजाइन किया गया है कि भूकंप आते ही यह बेड खुल जायेगा और इस पर सोया हुआ शख्स इसके अंदर चला जायेगा। बेड का सिस्टम इसे ऊपर से लॉक कर देगा और मकान गिरने की स्थिति में भी यह बेड नहीं टूटेगा। इस बिस्तर की बनावट भूकंप विज्ञान के सिद्धांत पर आधारित है।

योग्यतारू भारत में भूकंप इंजीनियरिंग की शिक्षा पोस्टग्रेजुएट स्तर पर उपलब्ध है, जिसमें छात्र मास्टर ऑफ इंजीनियरिंग (एमइ)/मास्टर ऑफ टेक्नोलॉजी (एमटेक) कर सकते हैं। इन कोर्सो में ग्रेजुएट एप्टीट्यूट टेस्ट इन इंजीनियरिंग (गेट) के माध्यम से प्रवेश ले सकते हैं। इस विषय में पीएचडी भी कर सकते हैं। आईआईटी जैसे प्रसिद्ध संस्थानों में भी एंट्रेंस एग्जाम के मदद से इस कोर्स में दाखिला लिया जा सकता है। इस क्षेत्र में एमटेक की डिग्री हासिल की जाती है।

प्रवेश परीक्षाएं

चूंकि यह एक वैज्ञानिक क्षेत्र है इसलिए इस क्षेत्र में कॅरिअर बनाने हेतु बारहवीं तक भौतिकी तथा गणित विषय होना आवश्यक है इसके अलावा 12वीं में फिजिक्स, केमिस्ट्री और मैथमेटिक्स में कम से कम 55 फीसदी अंक होना जरूरी है। अभ्यर्थी के 10 वीं व 12वीं में अंग्रेजी में 50 फीसदी अंक होना अनिवार्य है भूकंप इंजीनियरी के पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु प्रवेश परीक्षाएं भी उत्तीर्ण करनी होती हैं। भूकंप इंजीनियरिंग का कोर्स करने के उपरांत सरकारी संगठनों, एजेंसियों, उद्योग क्षेत्र या विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के अवसर हैं। भूकंपरोधी संरचनाओं का निर्माण। यह एक अंतःविषय अध्ययन क्षेत्र है और इसमें एक अध्ययन शामिल है यह सिविल इंजीनियरिंग, भूभौतिकी, मिट्टी विज्ञान, गणित, सांख्यिकी, मौसम विज्ञान और कंप्यूटर विज्ञान और इंटरनेट आदि का मिलाजुला क्षेत्र हैं। इन वैज्ञानिकों का कामभूकंप पर शोध करना होता है।

अवसर

पिछले कुछ वर्षो में भूकंप इंजीनियरिंग विषय में अध्ययन करनेवाले लोगों की संख्या तेजी से बढ़ी है. देश-विदेश में खुल रहे भूकंप अध्ययन केंद्रों, शोध संस्थाओं, सर्वे कंपनियों आदि में काम करने के अवसर तो पर्याप्त संख्या में हैं ही, साथ ही यदि इस क्षेत्र में अच्छी योग्यता हासिल कर ली जाये, तो इस विषय को विभिन्न शिक्षण संस्थानों में पढ़ाने का भी अवसर मिल सकता है। अगर आप अनुसंधान के क्षेत्र में जाने का निश्चय करते हैं तो सरकारी और निजी दोनों ही क्षेत्रों में प्रचुर अवसर उपलब्ध हैं। अनेक केंद्रीय संस्थानों संगठनों, अनुसंधान एवं विकास परमाणु ऊर्जा

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों के दौरान पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर 26 बड़े भूकंप आए, जिससे वैश्विक स्तर पर करीब डेढ़ लाख लोगों की असमय मौत हुई। यह दुर्भाग्य ही है कि भूकंप का परिणाम अत्यंत व्यापक होने के बावजूद अभी तक इसके बारे में सही-सही भविष्यवाणी करने में सफलता नहीं मिली है। इसी कारण से इस आपदा की संभावित प्रतिक्रिया के अनुसार ही कुछ कदम उठाए जाते हैं। इंजीनियरिंग की वह शाखा जिसके अंतर्गत भूकंप का अध्ययन किया जाता है, भूकंप इंजीनियरिंग कहलाती है और भूकंप इंजीनियरिंग का अध्ययन करने वाले इंजीनियर/वैज्ञानिक को इंजीनियरिंग भूकंप कहते हैं। भूकंप के समय एक हल्का सा झटका महसूस होता है। फिर कुछ अंतराल के बाद एक लहरदार या झटकेदार कंपन महसूस होता है, जो पहले झटके से अधिक प्रबल होता है।

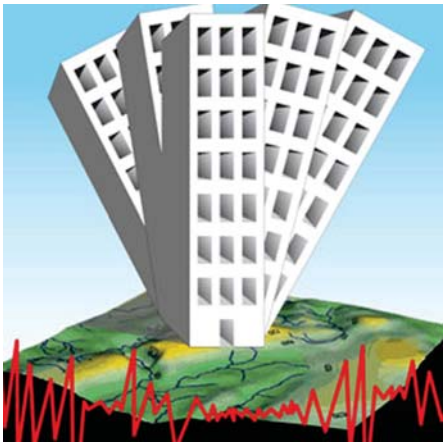

भूकंप की स्थिति में जान की सुरक्षा प्रदान करनेवाले इस बेड में वैंग वेंक्सी ने इमरजेंसी में काम आनेवाली सभी चीजें जैसे खाने का सामान, पानी और फर्स्ट ऐड जैसी चीजें रखने की व्यवस्था भी की है। भूकंप के दौरान आनेवाली समस्याओं को बारीकी से समझते हुए इस बेड को ऐसे डिजाइन किया गया है कि भूकंप आते ही यह बेड खुल जायेगा और इस पर सोया हुआ शख्स इसके अंदर चला जायेगा। बेड का सिस्टम इसे ऊपर से लॉक कर देगा और मकान गिरने की स्थिति में भी यह बेड नहीं टूटेगा। इस बिस्तर की बनावट भूकंप विज्ञान के सिद्धांत पर आधारित है।

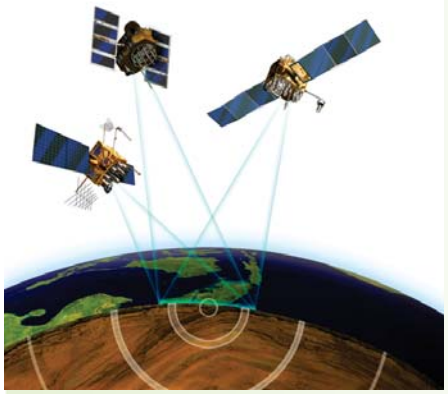

विभाग,पृथ्वी विज्ञान विभाग, में भूकंप वैज्ञानिक, भू-वैज्ञानिक, रिमोट सेंसिंग इंजीनियर तकनीकी सेवा इंजीनियर,वरिष्ठ जीआईएस इंजीनियर, प्रधान सॉटवेयर इंजीनियर, मॉडल विकास विश्लेषक, वरिष्ठ जोखिम विश्लेषक, वैज्ञानिक सहायक आदि पदों पर भर्ती की जाती है। इन संस्थानों के अंतर्गत, पुल,अंतरिक्ष स्टेशन, तेल और प्राकृतिक गैस निगम, इमारतों, पुलों, हवाई अड्डों, राजमार्गों, जल आपूर्ति विभाग मौसम पूर्वानुमान विभाग, भारतीय भू सर्वेक्षण विभाग आदि शामिल हैं। भूकंप इंजीनियरिंग पृथ्वी विज्ञान से संबंधित वैज्ञानिक क्षेत्र है भूकंप को सीमित करके समाज, प्राकृतिक और मानव निर्मित पर्यावरण की रक्षा करना, सामाजिक-आर्थिक रूप से स्वीकार्य स्तरों के लिए भूकंपीय जोखिम भूकंप इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम में शामिल हैं भूकंप इंजीनियर को उन इमारतों को डिजाइन और निर्माण करने की आवश्यकता है जिसमें हम रहते हैं और हर दिन काम करते हैं भारत में भूकंप इंजीनियरिंग के अंतर्गत इमारतों, पुलों, हवाई अड्डों, राजमार्गों, जल आपूर्ति प्रणालियों, और भूकम्प वास्तुविद्या आदि शामिल हैं। एक इंजीनियरिंग पेशे के रूप में भूकंप इंजीनियरिंग, टेक्नोक्रेट, सिविल इंजीनियर,भू-टेकोलॉजिस्ट, भौतिकविदों और उद्योग में एक नया इंजीनियरिंग क्षेत्र है । वहीं सरकारी और निजी कंपनी में ,निर्माण उद्योग (दबाव पोत/वाल्व आदि), परमाणु ऊर्जा विभाग, एनपीसीआईएल, इसरो, सीबीआरआई, तेल और गैस उद्योग, पेट्रोलियम और रिफाइनरी उद्योग, विमान उद्योग, शिपिंग उद्योग, ऑटोमोबाइल उद्योग आदि में भूकंप इंजीनियर की भारी मांग है।

मुख्य विषय

भूकंप इंजीनियरिंग के अंतर्गत मुख्य विषय के रूप में पृथ्वी का इतिहास व सिद्धांत, उन्नत संरचनात्मक विश्लेषण, कंपन का सिद्धांत, परिमित तत्व विधि, टेक्टोनिक ,सीस्मोलॉजी और जियोटेक्निकल भूकंप इंजीनियरिंग भूकंप के झटके का विश्लेषण, भूरसायन, भवनों का भूकंपीय डिजाइन डिजाइन, अनुकूलन तकनीक, भूकंप विश्लेषण , नाभिकीय भवन का भूकंपीय डिजाइन,भूकंप प्रतिरोधी संरचना का डिजाइन,उन्नत आरसीसी डिजाइन, भूकंप विश्लेषण सॉटवेयर , स्ट्रक्चरल डायनेमिक्स, शोध प्रबंध, गुफाओं का अध्ययन, अवक्षेपण पैटर्न और स्ट्रेटिग्राफिक आर्किटेक्चर का अध्ययन, बड़ी स्लाइड और ज्वालामुखी का विश्लेषण, विस्फोटक परीक्षण , इंस्ट्रूमेंटेशन एंड कम्युनिकेशन, विद्युत, मैकेनिकल, यातायात, मौसम विज्ञान, खदानों का अध्ययन, आपदा प्रबंधन, रिमोट सेंसिंग, उपग्रह तकनीक आदि विषय शामिल हैं ।

वेतन

प्रारंभिक दौर में एक भूकंप वैज्ञानिक प्रतिमाह 30 से 50 हजार रुपए प्रतिमाह कमा सकता है। अनुभव प्राप्त करने के बाद 50 से 80 हजार रुपए आसानी से कमाए जा सकते हैं। इसके अलावा आप विदेशों में नौकरी तलाश करें तो वहां आपको बेहतर वेतन मिल सकता है।

प्रमुख शिक्षण संस्थान

- राष्ट्रीय भू-भौतिक अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद
- भूकंप इंजीनियरिंग विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुड़की।
- राष्ट्रीय भूकंप इंजीनियरिंग सूचना केंद्र, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर।
- भू-भौतिकी विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- वाडिया हिमालयी भू-विज्ञान संस्थान, देहरादून।
- मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई।
- पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़
- एनआईटी, रायपुर (छ.ग.)
- नेशनल इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी, राउरकेला (उड़ीसा)
- पुणे विश्वविद्यालय, पुणे
- जादवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता
- अन्नामलाई यूनीवर्सिटी, अन्नामलाई
- राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान - एनआईटी सिलचर
- इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी (इग्नू), नई दिल्ली।
- नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजास्टर मैनेजमेंट, नई दिल्ली।
- गुरु गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ यूनिवर्सिटी, दिल्ली।
- इंटरनेशनल सेंटर ऑफ मद्रास यूनिवर्सिटी, चेन्नई।
- डिजास्टर मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट, भोपाल।
- नॉर्थ बंगाल यूनिवर्सिटी, दार्जिलिंग।

goswamisanjay80@gmail.com

धूमकेतु और क्षुद्रग्रह से निर्मित अनोखी खगोलीय आतिशबाज़ी

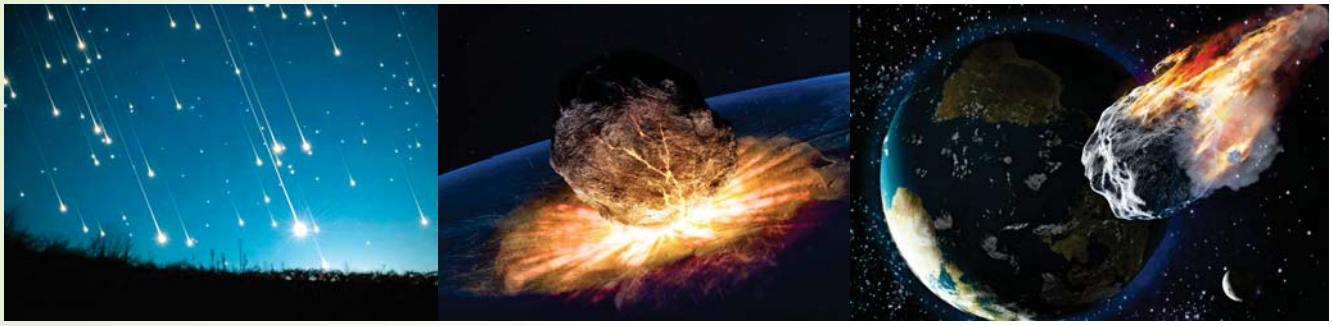

इरफॉन ह्यूमन

डॉ. इरफान ह्यूमन विगत पच्चीस वर्षों से 'साइंस न्यूज एण्ड व्यूज़' मासिक विज्ञान पत्रिका का संपादन व प्रकाशन कर रहे हैं। आप विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रमों के माध्यम से देशभर में वैज्ञानिक जागरुकता के लिए प्रयासरत हैं। आपके एक हजार से अधिक लेख प्रकाशित हुए हैं, आकाशवाणी से अनेक विज्ञानवार्ताओं का प्रसारण हुआ है, विज्ञान धारावाहिक लेखन तथा विज्ञान डाक्यूमेंट्री फिल्मों के निर्माण में आपका बड़ा योगदान है। मुंबई में साइंस फिल्म फेस्टिवल आपकी फिल्में प्रदर्शित हुई हैं। विज्ञान लेखन तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए आपको कई सम्मान प्राप्त हैं तथा कई वैज्ञानिक संस्थाओं के मानद हैं। वर्तमान में आप शाहजहाँपुर उ.प्र. में निवासरत हैं।

खगोलीय आतिशबाज़ी यानी उल्का वर्षा (Meteor shower) एक ऐसी खगोलीय घटना है जिसमें किसी ग्रह पर आकाश के किसी विशिष्ठ स्थान से बार-बार कई उल्का बरसते हुए प्रतीत होते हैं। यह उल्का वास्तव में खगोलीय मलबे की धाराओं के ग्रह के वायुमंडल पर अति-तीव्रता से गिरने से प्रतीत होते हैं। इनमें से अधिकतर का आकार बहुत ही छोटा (रेत के कण से भी छोटा) होता है, इसलिए वह धरती की सतह तक पहुँचने से बहुत पहले ही ध्वस्त हो जाते हैं, लेकिन बड़े आकार के उल्कापिण्ड जब वायुमण्डल के घर्षण से पूरी तरह से जल नहीं पाते तो वह कभी-कभी पृथ्वी की सतह तक पहुंच जाते हैं। ऐसी ही दो उल्का वर्षा इस माह रात के आकाश में देखने को मिलेंगी।

5-6 नवम्बर को टॉराइड्स उल्का वर्षा (Taurids Meteor Shower) की एक विलक्षण खगोलीय घटना घटित होगी। टॉराइड्स एक लंबे समय तक चलने वाली मामूली उल्का बौछार है जो प्रति घंटे केवल 5-10 उल्काओं का उत्पादन करती है। यह उल्का बौछार असामान्य प्रकार की है क्योंकि इसमें दो अलग-अलग धाराएँ विद्यमान होती हैं। सबसे पहली है धूल के दानों द्वारा तैयार की गई धारा, जिसे क्षुद्रग्रह (Asteroid) 2004 TG 10 द्वारा पीछे छोड़ा जाता है। दूसरी धारा धूमकेतु (Comet) 2 पी एनके (Encke) द्वारा छोड़े गए मलबे द्वारा निर्मित है। ये उल्का वर्षा प्रतिवर्ष 7 सितंबर से 10 दिसंबर तक चलती है। यह इस साल रात में अंधेरे वाले स्थानों से 5 नवंबर की रात को स्पष्ट दिखाई देगी। इस उल्का वर्षा में उल्काएं नक्षत्र वृषभ (Constellation Taurus) से निकलेंगी, लेकिन आकाश में कहीं भी दिखाई दे सकते हैं। इस उल्का वर्षा का शहर की रोशनी से दूर किसी अंधेरे स्थान से आधी रात के बाद सबसे अच्छा दृश्य दिखाई देगां।

टॉराइड्स उल्का वर्षा का नाम नक्षत्र वृषभ (Taurus) में उनके उज्ज्वल बिंदु के नाम पर रखा गया है, जहां वे आकाश से आते हैं। अक्टूबर के अंत और नवंबर की शुरुआत में उनकी घटना के कारण, उन्हें हेलोवीन फायरबॉल (Halloween fireballs) भी कहा जाता है। माना जाता है कि एनके और टॉराइड्स एक बहुत बड़े धूमकेतु के अवशेष हैं, जो पिछले 20,000 से 30,000 वर्षों में विघटित हो गए हैं, कई टुकड़ों में टूटकर पृथ्वी या अन्य ग्रहों के आकर्षण से खिंचे चले आते होंगे। कुल मिलाकर, आंतरिक सौर मंडल में उल्का पदार्थ की यह धारा सबसे बड़ी मानी जाती है। चूंकि उल्का धारा अंतरिक्ष में नहीं फैली है, इसलिए पृथ्वी को इसके माध्यम से गुजरने में कई सप्ताह लगते हैं, जिससे उल्का गतिविधि की एक विस्तारित अवधि होती हैं। टॉरिड्स की वज़नदार सामग्री, धूल के दानों के बजाय कंकड़ से बने होते हैं।

17-18 नवंबर को लियोनिड्स उल्का वर्षा देखने को मिलेगी। लियोनिड्स एक औसत उल्का बौछार है, जो अपने चरम पर प्रति घंटे 15 उल्का का उत्पादन करती है। यह बौछार इस मायने में अनूठी है कि इसमें हर 33 साल में एक चक्रवाती शिखर होता है जहाँ प्रति घंटे सैकड़ों उल्काएं देखी जा सकती हैं। इससे पूर्व यह यह खगोलीय घटना वर्ष 2001 में घटित हुई थी। लियोनिड्स धूमकेतु टेम्पल-टटल (Comet Tempel-Tuttle) द्वारा छोड़े गए धूल के दानों द्वारा निर्मित है, जिसे वर्ष 1865 में खोजा गया था। इस उल्का वर्षा का सर्वश्रेष्ठ दृश्य आधी रात के बाद एक अंधेरे स्थान से दृष्टिगोचर होगा। उल्का नक्षत्र लियो से विकिरण करेंगे, लेकिन आकाश में कहीं

भी दिखाई दे सकते हैं। लियोनिड्स एक प्रचलित उल्का बौछार है, जो हर 33 साल में होने वाले अपने शानदार उल्का तूफान के लिए भी जाना जाता है। लियोनिड्स नक्षत्र लियो (Constellation Leo) में अपने मूल के स्थान से अपना नाम प्राप्त करते हैं, उल्का आकाश में उस बिंदु से विकीर्ण होते दिखाई देते हैं।

पृथ्वी टेम्पल-टटल धूमकेतु के मार्ग से छोड़े गए कणों की उल्कापिंड धारा (Meteoroid stream) से होकर गुजरती है। धारा में ठोस कण शामिल होते हैं, जिन्हें उल्कापिंड के रूप में जाना जाता है, जो धूमकेतु द्वारा उत्सर्जित होता है क्योंकि इसके जमे हुए गैस सूर्य की गर्मी के तहत वाष्पित हो जाते हैं जब यह काफी करीब होता है, आमतौर पर बृहस्पति की कक्षा से करीब। लिओनिड्स एक तेज गति वाली धारा है जो पृथ्वी के मार्ग का सामना करती है और 72 किमी/सेकंड पर प्रभाव डालती है। बड़े लियोनिड्स जो लगभग 10 मिमी के होते हैं उनका एक द्रव्यमान होता है और उन्हें उज्ज्वल (स्पष्ट परिमाण 1-5) उल्का उत्पन्न करने के लिए जाना जाता है। एक वार्षिक लियोनिद उल्कापात पूरे ग्रह में 12 या 13 टन कणों को जमा कर सकता है।

11 नवंबर बुध पारगमन (Transit of Mercury) का दुर्लभ नज़ारा देखने को मिलेगा, जब बुध ग्रह सूर्य पर से गुज़रता हुआ दिखाई देगा। बुध ग्रह पृथ्वी और सूर्य के बीच सीधे चलन करेगा। दूरबीन और अनुमोदित सौर फिल्टर वाले दर्शक सूर्य के चेहरे के पार जाने वाले बुध ग्रह की अंधेरे डिस्क का निरीक्षण करने में सक्षम होंगे। यह एक अत्यंत दुर्लभ घटना है जो हर कुछ वर्षों में एक बार होती है। बुध का अगला पारगमन 2039 तक नहीं होगा। यह पारगमन पूरे दक्षिण अमेरिका और मध्य अमेरिका और उत्तरी अमेरिका, मैक्सिको, यूरोप, मध्य पूर्व और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में दिखाई देगा। इस घटना को अपनी संपूर्णता में देखने का सबसे अच्छा स्थान पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, मध्य अमेरिका और दक्षिण अमेरिका होगा।

यह खगोलीय घटना ऐसी है जिसमें सूर्य का सबसे करीबी ग्रह बुध, सूर्य और पृथ्वी के बिल्कुल बीच में आने वाला है. जिसके चलते आपको बुध सूर्य के ऊपरी भाग से गुजरता हुआ नज़र आता है। ऐसा सिर्फ बुध और शुक्र ग्रह के साथ ही हो सकता है क्योंकि दूसरे सभी ग्रह पृथ्वी से काफी दूर है इसलिए जो कभी भी पृथ्वी और सूर्य के बीच में नहीं आते हैं। इस घटना को पारगमन (Transit) कहा जाता है। बुध का पारगमन सौ साल के अवधि में तकरीबन 13 से 14 बार हो सकता है लेकिन यह कोई जरूरी नहीं है कि पृथ्वी के एक ही जगह से यह दिखाई दे, यह पृथ्वी के अलग-अलग भागों से दिखाई दे सकता है।

सूनामी के प्रति जागरूकता

सुनामी बहुत से लोगों, विशेषकर तटीय क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को प्रभावित कर सकती है। वर्ष 2004 में हिंद महासागर में भूकंप के कारण सुनामी उत्पन्न हुई जिसने लगभग 15 देशों में करीब पांच लाख लोगों को प्रभावित किया था। वर्ष 2015 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 5 नवंबर को विश्व सुनामी जागरूकता दिवस (World Tsunami Awareness Day) के रूप में नामांकित किया। दुनिया भर में लोगों के बीच सुनामी के बारे में सामान्य जागरूकता फैलाने के लिए इस दिवस को शुरू किया गया है। 5 नवम्बर, 2016 को पहला विश्व सुनामी जागरूकता दिवस मनाया गया जिसमें डिजास्टर रिस्क रिडक्शन चौंपियंस में एशियन

मिनिस्टर कांफ्रेंस फॉर डिजास्टर रिस्क रिडक्शन की घटनाओं का आयोजन किया गया। आपदा जोखिम कम करने के लिए संयुक्त राष्ट्र कार्यालय के सहयोग से भारतीय सरकार द्वारा विज्ञान भवन, नई दिल्ली में इस संबंध में पहला सम्मेलन 3-5 नवंबर, 2016 का आयोजन किया गया था।

समुद्र के भीतर अचानक जब बड़ी तेज हलचल होने लगती है तो उसमें तूफान उठता है जिससे ऐसी लंबी और बहुत ऊंची लहरों का रेला उठना शुरू हो जाता है जो जबरदस्त आवेग के साथ आगे बढ़ता है, इन्हीं लहरों के रेले को सूनामी कहते हैं। दरअसल सूनामी जापानी शब्द है जो सू और नामी से मिल कर बना है सू का अर्थ है समुद्र तट और नामी का अर्थ है लहरें। पहले सूनामी को समुद्र में उठने वाले ज्वार के रूप में भी लिया जाता रहा है लेकिन ऐसा नहीं है। दरअसल समुद्र में लहरें चन्द्रमा जैसे खगोलीय पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से उठती हैं, लेकिन सूनामी लहरें इन आम लहरों से अलग होती हैं।

सूनामी के दौरान जब लहरें तट के पास आती हैं, तो लहरों का निचला हिस्सा ज़मीन को छूने लगता है, इनकी गति कम हो जाती है और ऊँचाई बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में जब ये तट से टक्कर मारती हैं तो तो तबाही को अंजाम देती है। इनकी गति 420 किलोमीटर प्रति घण्टा तक और ऊँचाई 10 से 18 मीटर तक हो सकती हैं। अक्सर समुद्री भूकम्पों की वजह से ये तूफान पैदा होते हैं। सूनामी लहरें समुद्री तट पर भीषण तरीके से हमला करती हैं और जान-माल का नुकसान कर सकती है। इनकी भविष्यवाणी करना मुश्किल है। जिस तरह वैज्ञानिक भूकंप के बारे में भविष्यवाणी नहीं कर सकते वैसे ही सूनामी के बारे में भी अंदाजा नहीं लगा सकते। लेकिन सूनामी के अब तक के रिकॉर्ड को देखकर और महाद्वीपों की स्थिति को देखकर वैज्ञानिक कुछ अंदाजा लगा सकते हैं। धरती की जो प्लेट्स या परतें जहाँ-जहाँ मिलती है वहाँ के आसपास के समुद्र में सूनामी का ख़तरा ज़्यादा होता है। जैसे आस्ट्रेलियाई परत और यूरेशियाई परत जहाँ मिलती हैं वहाँ स्थित है सूमात्रा जो कि दूसरी तरफ फिलीपीनी परत से जुड़ा हुआ है। सूनामी लहरों का कहर वहाँ भयंकर रूप में देखा जा रहा है।

शांति और विकास के लिए विज्ञान

वैज्ञानिक विधियां और वैज्ञानिक तकनीक हमारे जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। विज्ञान का उपयोग यदि शांति और विकास के लिए किया जाए तो विश्व में हर ओर सुख-शांति रहेगी। दुनिया में शांति और विकास के कार्य कर रहे वैज्ञानिकों को याद रखना चाहिए ताकि लोगों को हमारे वैज्ञानिकों के द्वारा किये जाने वाले अभूतपूर्व कार्यों के बारे में जानकारी मिल सके। यही नहीं, विश्व के सभी देशों को आपस में अपनी

विभिन्न तकनीक को साझा करके विश्व कल्याण के लिए आगे बढना चाहिए।

इसी तारतम्य में 10 नवम्बर को शान्ति व विकास के लिए विश्व विज्ञान दिवस (World Science Day for Peace and Development) मनाया जाता है। शांति और विकास के लिए विश्व विज्ञान दिवस, शांति एवं विकास कार्यों में विज्ञान के योगदान के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए मनाया जाता है। इस दिन सभी विज्ञान संस्थानों, जैसे राष्ट्रीय एवं अन्य विज्ञान प्रयोगशालाएं, विज्ञान अकादमियों, स्कूल और कॉलेज तथा प्रशिक्षण संस्थानों में विभिन्न वैज्ञानिक गतिविधियों से संबंधित कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि इस दिवस' को वर्ष 1999 में बुडापेस्ट में संयुक्त रूप से अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान परिषद और यूनेस्को द्वारा विज्ञान पर विश्व सम्मेलन के अनुसरण में मनाया गया। यूनेस्को द्वारा इस दिवस की स्थापना दुनिया भर में विज्ञान के लाभों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए की थी। इसका उद्देश्य समाज में विज्ञान की भूमिका को रेखांकित करना है। इसके द्वारा जन सामान्य के जीवन में विज्ञान के प्रभाव को प्रदर्शित करना है।

निमोनिया को हल्के में न लें

बदलते मौसम के साथ छींकना, खांसना, गले में खराश और तेज बुखार जैसी समस्याएं निमानिया का लक्षण हो सकती हैं। समय पर निमोनिया का इलाज नहीं हुआ, तो यह संक्रामक रोग जानलेवा भी हो सकता है। अगर घर में किसी को निमोनिया हुआ है, तो आपको अधिक सावधान रहने की ज़रूरत है, क्योंकि यह रोग संक्रमण के कारण बहुत जल्दी फैलता है। बच्चों से बूढ़ों तक को प्रभावित करने वाला निमोनिया वास्तव में फेफड़े में सूजन वाली एक परिस्थिति है। हलांकि आज संक्रामक एजेंटों के 100 से अधिक उपभेदों यानी स्ट्रेन्स की पहचान करली गयी है लेकिन अधिकांश मामलों के लिये इनमें केवल कुछ ही ज़िम्मेदार हैं। जीवाणु व विषाणु के मिश्रित कारण वाले संक्रमण बच्चों के संक्रमणों के मामलों में 45 प्रतिशत तक और वयस्कों में 15 प्रतिशत तक ज़िम्मेदार होते हैं। सावधानी के साथ किये गये परीक्षणों के बावजूद लगभग आधे मामलों में कारक एजेंट पृथक नहीं किये जा सकते हैं। निमोनिया एक ऐसा रोग है जो दुनिया के हर कोने में करोड़ों लोगों को प्रभावित करता है जिस कारण लगभग 4 मिलियन लोगों की मृत्यु हो जाती हैं। बीसवीं शताब्दी में प्रतिजैविक (Antibiotic) उपचार और टीकों के आने से बचने वाले लोगों की संख्या बेहतर हुई है। बावजूद इसके विकासशील देशों में बुजुर्गों और शिशुओं में निमोनिया अभी भी मृत्यु का प्रमुख कारण बना हुआ है। 12 नवम्बर को विश्व निमोनिया दिवस (Wrold Pneumonia Day) मनाया जाता है।

निमोनिया कई प्रकार का हो सकता है, लेकिन कुछ ख़ास प्रकार हैं-जीवाणुजनित अर्थात बैक्टीरियल निमोनिया, जो जीवाणुओं के द्वारा फैलता है। इसके कारण शरीर कमज़ोर हो जाता है और फिर कमजोर प्रतिरक्षा के कारण बैक्टीरिया फेफड़ों में संक्रमण पैदा कर देते हैं। यह बीमारी ख़राब पोषण, बुढ़ापे या खराब प्रतिरक्षा की वजह से हो सकती है। बैक्टीरियल निमोनिया सभी उम्र को प्रभावित कर सकता है। वायरल अर्थात विषाणुजनित निमोनिया वायरल निमोनिया फ्लू सहित कई वायरस के कारण हो सकता है। यह मुख्य रूप से युवा, बुजुर्गों और इन्फ्लूएंजा से पीड़ित लोगों में पाई जाने वाली बीमारी है। इन्फ्लुएंज़ा ए और बी वायरस वयस्कों में निमोनिया रोग का मुख्य कारण है और शिशुओं में वायरल निमोनिया का मुख्य कारण रेस्पिरेटरी सिंकिटियल वायरस (आरएसवी) है। अगर किसी को वायरल निमोनिया है, तो उस को बैक्टीरियल निमोनिया होने की आशंका हो सकती है। तीसरा प्रकार है-माइकोप्लाज़्मा न्यूमोनिया, जो एक प्रकार का 'एटिपिकल' बैक्टीरिया है, जो आमतौर पर श्वसन तंत्र के हल्के संक्रमण का कारण बनता है। इन जीवाणुओं के कारण बच्चों में ट्रेकोब्रोनिटिस नाम की बीमारी हो सकती है, जिसे आमतौर पर सीने में ठंड लगना कहा जाता है। माइकोप्लाज़्मा न्यूमोनिया लक्षणों में अक्सर थकान, गले में ख़राश, बुख़ार और खांसी शामिल होती है। कभी-कभी माइकोप्लाज़्मा निमोनिया के कारण गंभीर फेफड़ों का संक्रमण भी हो सकता है। चौथा प्रकार है-फंगल निमोनिया, जो संक्रमित फफूंद और फंगस की वजह से होने वाला एक प्रकार निमोनिया रोग है, जो मिट्टी में रहता है। संक्रमित फफूंद के संपर्क में आने से लोग संक्रमित हो सकते हैं। यह हफ्तों से लेकर महीनों तक होने वाले फ्लू जैसे लक्षण पैदा कर सकता है, क्योंकि इसके लक्षण बुखार, खांसी, सिरदर्द, दाने, मांसपेशियों में दर्द या जोड़ों में दर्द जैसी अन्य आम बीमारियों समान हैं, इसलिए इसके उपचार में अक्सर देरी होती है।

पिछले दिनों एक अध्ययन में छत्तीसगढ़ में बैक्टीरिया सेरेशिया मर्सेसेंस का पता चला है, जो पिछले दो दशकों तक सुप्त रहने के बाद धीरे-धीरे मरीजों में संक्रमण व गंभीर बीमारी की वजह के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। डॉक्टरों का कहना है कि इस बैक्टीरिया के असर से लगता है कि शरीर में टीबी और निमोनिया हो गया है लेकिन ऐसा होता नहीं। इसका असर होने पर एंटी बायोटिक दवाओं का असर भी नहीं होता। अभी तक सिम्स में ऐसे 8 मरीजों के सैंपल मिल चुके हैं जिनमें यह बैक्टीरिया पाया गया है। इसकी खोज 60 साल पहले यूरोपीय देशों ने की थी।

देखा गया है कि सामान्य तौर पर मरीजों के सैंपल में ई. कोलाई, क्लेबशियेला, स्यूडोमोनास, स्टेफाइलोकॉकस, विब्रियो, साल्मोनेला जीवाणु ही रोग पैदा करने के लिए लिए जाने जाते हैं। पिछले दिनों शोध व अध्ययन में करीब 1220 सैंपल सिम्स के मॉइक्रोबायोलॉजी विभाग में जांच-परीक्षण व कल्चर-सेंसिटिविटी के लिए भेजे गए थे, इनमें से 70 प्रतिशत में रोगकारक जीवाणु की पहचान की गई, अन्य 30 प्रतिशत में मरीज से मिले सैंपल जांच के लिए उपयुक्त नहीं मिले। जैसे-खखार के स्थान पर थूक, पेशाब का ठीक सैंपल न देना, एंटीबॉयोटिक खाकर सैंपल एकत्र करना आदि। सैंपलों की जांच में 8 मरीजों में सेरेशिया मर्सेसेंस बैक्टीरिया की पहचान की गई।

दिनचर्या के प्रति सजग रहें

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के मुताबिक, दुनिया भर में इस समय 42.2 करोड़ लोग डायबिटीज़ यानी मधुमेह से पीड़ित हैं। यह चिन्ता का विषय है कि बीते तीस सालों में मधुमेह पीड़ितों की संख्या में चार गुना वृद्धि हुई है। डायबिटीज़ को हल्के में नहीं लेना चाहिए क्योंकि इससे पीड़ित लोगों को हार्ट अटैक (दिल का दौरा) और हार्ट स्ट्रोक (हृदयाघात) हो सकता है। इसके साथ-साथ डायबिटीज़ से किडनी फेल और पैरों के निष्क्रिय होने जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। लेकिन इसके बाद भी आम लोगों में इस बीमारी के लक्षणों, बचाव और कारणों को लेकर जागरुकता नहीं है। इसी को लेकर 14 नवम्बर को विश्व मधुमेह दिवस (World diabetes day) मनाया जाता है।

जब हमारा शरीर खून में मौजूद शुगर की मात्रा को सोखने में असमर्थ हो जाता है तो ये स्थिति डायबिटीज़ को जन्म देती है। दरअसल, हम जब भी कुछ खाते हैं तो हमारा शरीर कार्बोहाइड्रेट को तोड़कर ग्लूकोज में बदलता है। इसके बाद पेंक्रियाज से इंसुलिन नाम का एक हारमोन निकलता है जो कि हमारे शरीर की कोशिकाओं को ग्लूकोज़ को सोखने का निर्देश देता है, इससे हमारे शरीर में ऊर्जा पैदा होती है। लेकिन जब इंसुलिन का फ्लो रुक जाता है तो हमारे शरीर में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ना शुरू हो जाती है।

सामान्य स्वस्थ व्यक्ति में खाने के पहले रक्त और ग्लूकोज़ का स्तर 70 से 100 mg/dl (Milligrams per Deciliter) रहता है। खाने के बाद यह स्तर 120-140 mg/dl हो जाता है और फिर धीरे-धीरे कम होता चला जाता है। पर मधुमेह हो जाने पर यह स्तर सामन्य नहीं हो पाता और कभी-कभी तो यह स्तर 500 mg/dl से भी ऊपर चला जाता है। मधुमेह एक ऐसी बीमारी हैं जिसमें रोगी के ख़ून में ग्लूकोज़ की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है। ऐसा दो कारणों से हो सकता है या तो शरीर पर्याप्त मात्रा में इंसुलिन का उत्पादन नहीं कर होता है या फिर कोशिकाएं उत्पन्न हो रही इंसुलिन पर प्रतिक्रिया नहीं कर पाती है। इंसुलिन एक हार्मोन है जो आपके शरीर में कार्बोहाइड्रेट और वसा के चयापचय को नियंत्रित करता है। चयापचय से अर्थ है उस प्रक्रिया से जिसमे शरीर खाने को पचाता है ताकि शरीर को उर्जा मिल सके, जिससे उसका विकास हो सके।

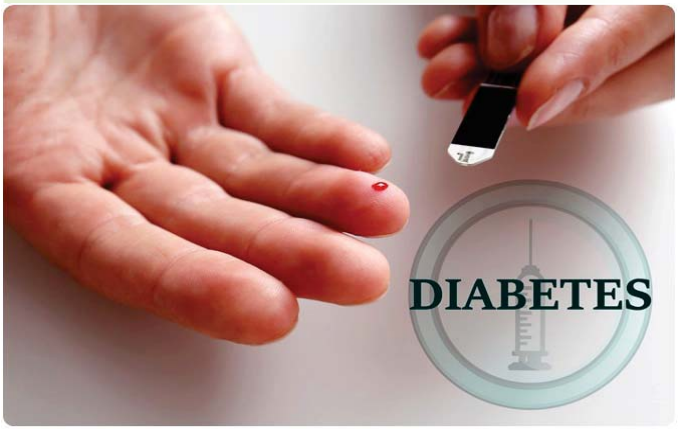

डायबिटीज़ के कई प्रकार होते हैं लेकिन टाइप 1, टाइप 2 और गेस्टेशनल डायबिटीज से जुड़े मामलों की अधिक पाए जाते हैं। टाइप 1 डायबिटीज में आपके पेंक्रियाज में हारमोन इंसुलिन बनना बंद हो जाता है। इससे हमारे खून में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ने लगती है। अब तक वैज्ञानिक ये पता लगाने में सफल नहीं हुए हैं कि ऐसा क्यों होता है। लेकिन इसे आनुवंशिकता और वायरल इन्फेक्शन से जोड़कर देखा जाता है। इससे पीड़ित लोगों में से लगभग दस फीसदी लोग टाइप 1 डाटबिटीज से पीड़ित होते हैं। वहीं, टाइप 2 डायबिटीज में पेंक्रियाज में जरूरत के हिसाब से इंसुलिन नहीं बनता है या हारमोन ठीक से काम नहीं करता है।

डायबिटीज़ की पहचान इन लक्षणों के आधार पर की जा सकती है, जैसे अधिक प्यास या भूख लगना, अचानक वजन का घट जाना लगातार कमज़ोरी और थकावट महसूस करना, घाव भरने में ज्यादा समय लगना, बार-बार पेशाब होना चीजों का धुंधला नजर आना, त्वचा में संक्रमण होना और खुजली होना इस रोग के लक्षण हो सकते हैं। सामान्यतः मधुमेह या डायबिटीज़ (Diabetes mellitus) चयापचय संबंधी बीमारियों (Metabolic diseases) का एक समूह है जिसमें लंबे समय तक उच्च रक्त शर्करा (High blood sugar) का स्तर होता है। उच्च रक्त शर्करा के लक्षणों में अक्सर पेशाब आना होता है, प्यास की बढ़ोतरी होती है, और भूख में वृद्धि होती है। यदि अनुपचारित छोड़ दिया जाता है मधुमेह कई जटिलताओं का कारण बन सकता है। तीव्र जटिलताओं में मधुमेह केटोएसिडोसिस, नॉनकेटोटिक हाइपरोस्मोलर कोमा और अन्ततः मौत शामिल हो सकती है। गंभीर दीर्घकालिक जटिलताओं में हृदय रोग, स्ट्रोक, क्रोनिक किडनी की विफलता और आंखों को नुकसान आदि शामिल हैं।

डायबिटीज़ को नियंत्रण में रखने के लिए प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिए। इसमें योगा और नमाज़ बहुत लाभकारी है, जो न सिर्फ तनाव को कम करती है, बल्कि ये रक्त दाब और कोलेस्ट्रेल स्तर को भी नियंत्रित करने में सहायता करती है। इसके अतिरिक्त आप ऐसा भोजन अवश्य खाएं, जिनमें फ़ाइबर की मात्रा अधिक हो। महिलाओं को विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शरीर के वज़न का ज़्यादा होना यानी मोटापा होना न तो हमारे स्वास्थ्य की दृष्टिकोण से अच्छा है और न हीं व्यक्तित्व के आकर्षण की दृष्टिकोण से ही । वज़न बढ़ना हमारे शरीर की एक ऐसी अवस्था है जब शरीर मे वसा की मात्रा अधिक हो जाती है । हम जितनी कैलोरी ले रहे है अगर उस अनुपात में हम ख़र्च या बर्न नहीं कर रहे तो बची हुई कैलोरी हमारे शरीर में वसा के रूप में जमा हो जाती है और हम धीरे-धीरे मोटापा के शिकार हो जाते हैं, जो आगे चलकर मधुमेह को जन्म दे सकता है। इसलिए अपने खानपान और दिनचर्चा के प्रति सजग रहना चाहिए!

समय पूर्व जन्म

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) का अनुमान है कि हर साल लगभग 1.5 करोड़ प्रीटर्म बच्चे दुनिया भर में जन्म लेते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि विश्व में हर दस में से एक बच्चा प्रीटर्म जन्म लेता है। 184 देशों में प्रीटर्म जन्म की दर 5 प्रतिशत से लेकर 18 प्रतिशत तक है। भारत में, हर साल पैदा होने वाले 2.7 करोड़ बच्चों में से 35 लाख बच्चे प्रीटर्म श्रेणी के होते हैं। प्री-टर्म यानी समय से पहले जन्म उसे कहा जाता है, जो गर्भावस्था के 37 सप्ताह से पहले ही हो जाता है. सामान्य गर्भावस्था आमतौर पर लगभग 40 सप्ताह की होती है। जन्म से पहले बच्चे को गर्भ में विकसित होने के लिए कम समय मिल पाता है, इसीलिए अक्सर चिकित्सा समस्याएं जटिल होती जाती हैं। ऐसे कई शिशुओं को दिमागी लकवा यानी सेरीब्रल पाल्सी, सीखने में कठिनाई और सांस संबंधी बीमारियों जैसे विभिन्न रोग होने का डर रहता है। ऐसे बच्चे आगे के जीवन में कई शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक कठिनाइयों का कारण बनते हैं। प्रीटर्म शिशु आकार में छोटा, बड़े सिर वाला होता है। इनके शरीर पर बाल अधिक होते हैं। इनके शरीर का तापमान भी कम रहता है। 17 नवम्बर को विश्व कुसमयता दिवस (World Prematurity Day) मनाया जाता है। अपरिपक्त जन्म के बारे में जागरूकता बढ़ाने और दुनिया भर के अपरिपक्व शिशुओं और उनके परिवारों की चिंताओं को दृष्टिगत रखते हुए हर वर्ष इस दिन का आयोजन किया जाता है।

समय से पहले जन्म के पीछे कोई एक कारण बताना मुश्किल होगा. फिर भी, गर्भवती महिला की कम आयु, पहले भी प्रीटर्म केस होना, डायबिटीज और हाई ब्लड प्रेशर कुछ सामान्य कारण हैं। यह आनुवंशिक कारणों से भी हो सकता है। गर्भवती महिला की प्रसव से पहले अच्छे से देखभाल और जागरुकता से इस स्थिति के प्रबंधन में आसानी हो सकती है। कई बार महिला के ख़राब स्वास्थ्य के कारण बच्चे की प्रसव जल्दी करनी पड़ती है। ऐसे में बच्चे सामान्य बच्चों की तुलना में कम वजन के पैदा होते हैं। ऐसे बच्चों को भविष्य में ओस्टियोपेनिया का ख़तरा होने की संभावना होती है। समय से पहले पैदा हुए कम वजन वाले अपरिपक्व शिशुओं बच्चों को भविष्य में ओस्टियोपेनिया होने का ख़तरा होता है। इसमें बच्चों की हड्डियां कमज़ोर (ओस्टियोपेनिया) हो जाती हैं और इनके भविष्य में टूटने के ख़तरे बने रहते हैं।

समय से पूर्व जन्म या 1,500 ग्राम से कम वज़न के शिशु को इक्यूबेटर में रखा जाता है। जहां शिशु को गर्भ जैसा वातावरण दिया जाता है। ऐसे शिशु में कई तरह की समस्याएं आती है, जैसे कि शरीर का ताप कम होना, इसके लिए 37 डिग्री तापमान लगातार बनाए रखना आवश्यक है। समय पूर्व जन्मे शिशु में प्रोटीन की अधिक आवश्यकता होती है। जो माँ के दूध में सर्वोत्तम रूप में पाया जाता है। क्योंकि मां के दूध में प्रोटीन एवं अन्य तत्वों की मात्रा शिशु की आवश्यकता अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। इस तरह के शिशु में कैल्सियम, फ़ासफोरस, सोडियम, कॉपर, सेलेनियम, आयरन एवं ज़िंक की आवश्यकता होती है, जिसे चिकित्सकों द्वारा अलग से दिया जाता है।

खुले में शौच मुक्त भारत

पश्चिम बंगाल में यूनिसेफ के कम्युनिकेशन फॉर डेवलपमेंट स्पेशलिस्ट नसीर अतीक कहते हैं कि खुले में शौच पोलियो का सबसे बड़ा कारण है, क्योंकि पोलियो का वायरस मल में ही पाया जाता है। उनके अनुसार, अगर पोलियो को जड़ से मिटाना है तो खुले में शौच की प्रथा को खत्म करना होगा। 52 लाख की आबादी वाले नदिया जिले में जहां 2011-12 में 30 प्रतिशत लोग खुले में शौच करते थे, आज शत प्रतिशत आबादी शौचालयों का इस्तेमाल करती है। यह सब सम्भव हुआ है स्वच्छ भारत मिशन के तहत देश को खुले में शौचमुक्त बनाने की दिशा में किये गये प्रयासों से। जब स्वच्छ भारत मिशन को अक्टूबर 2014 में लॉन्च किया गया था, तो अनुमानतः 550 मिलियन भारतीय खुले में शौच के लिये मजबूर थे जिससे देश का स्वच्छता संकेतक दुनिया में सबसे बुरी स्थिति में था लेकिन अक्टूबर 2014 से लेकर अब तक स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के तहत ग्रामीण भारत में 7.7 करोड़ से भी अधिक शौचालयों का निर्माण किया जा चुका है और स्थिति को और बेहतर बनाने की दिशा में प्रयास जारी हैं। इसी तारतम्य में 19 नवम्बर को विश्व शौचालय दिवस (World Toilet Day) मनाया जाता है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2 अक्टूबर, 2019 को घोषणा की कि भारत अब खुले में शौच से मुक्त हो गया है। महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के अवसर पर यहां आयोजित 'स्वच्छ भारत दिवस' कार्यक्रम में मोदी ने कहा कि 60 करोड़ से अधिक लोगों को शौचालय मुहैया कराने पर दुनिया ने भारत की प्रशंसा की है। मोदी ने 2014 में प्रधानमंत्री बनने के बाद महत्वाकांक्षी स्वच्छ भारत अभियान की शुरूआत की थी और ऐलान किया था कि दो अक्टूबर, 2019 को भारत खुले में शौच से मुक्त (ओडीएफ) हो जाएगा। आकड़े बताते हैं कि दुनिया में हर तीन में से एक महिला को सुरक्षित शौचालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है। खुले में शौच के लिए विवश होने का कारण महिलाओ और बालिकाओ की निजता सम्मान पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उनके खिलाफ हिंसा तथा बलात्कार जैसी घटनाओ की आशंका बनी रहती है। देश में स्वच्छता और शौचालय को लेकर चलाए जा रहे अभियान के बावजूद आज भी देश के कई गांवों के लोग खुले में शौच की आदत अपनाए हुए हैं।

research.org@rediffmail.com

आईसेक्ट पब्लिकेशन

हिन्दी में विज्ञान की लोकप्रिय किताबें

क्र	किताब	लेखक	मूल्य
1	खनिज और मानव	डॉ. विजय कुमार उपाध्याय	195/–
2	भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम	श्री कालीशंकर एवं राकेश शुक्ला	195/–
3	जल संरक्षण	डॉ. डी. डी. ओझा	195/–
4	भूमि संरक्षण	डॉ. दिनेश मणि	95/–
5	बच्चों के लिए विज्ञान मॉडल	श्री बृजेश दीक्षित	95/–
6	वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोत	सुश्री संगीता चतुर्वेदी	95/–
7	प्राचीन भारत में वैज्ञानिक चिंतन	डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती	95/–
8	इलेक्ट्रॉनिक आधारित सामरिक सुरक्षा तकनीक	डॉ. मनमोहन बाला	95/–
9	जैव विविधता संरक्षण	डॉ.मनीष मोहन गोरे	95/–
10	दूर संचार	श्री संतोष शुक्ला	150/–
11	घर–घर में विज्ञान	डॉ. के. एम. जैन	150/–
12	भौतिकी की विकास यात्रा	डॉ. के. एम. जैन	150/–
13	नैनोटेक्नॉलॉजी	डॉ. पी. के. मुखर्जी	95/–
14	हमारे जीवन में अंतरिक्ष	कालीशंकर एवं राकेश शुक्ला	195/–
15	वैश्विक तापन	डॉ. दिनेश मणि	95/–
16	ई–वेस्ट प्रबंधन	श्री संतोष शुक्ला	150/–
17	लेसर लाईट	डॉ. पी. के. मुखर्जी	150/–
18	न्यूक्लियर एनर्जी	डॉ. अनुज सिन्हा	95/–
19	न्यूट्रिनों की दुनिया	डॉ. के. एम. जैन	95/–
20	भोजवैटलैंड : भोपाल ताल	श्री राजेन्द्र शर्मा 'अक्षर'	195/–
21	महासागर बोलते हैं	श्री बजरंगलाल जेठू	250/–
22	महासागर : जीवन के आधार	श्री नवनीत कुमार गुप्ता	195/–
23	ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति	श्री महेन्द्र कुमार माथुर	195/–
24	सूक्ष्म जीव विज्ञान	डॉ. पंकज श्रीवास्तव एवं श्रीमती तोषी जैन	195/–
25	भारत में विज्ञान एवं विज्ञान संचार की परंपरा	श्री विश्वमोहन तिवारी	195/–
26	सेहत और हम	डॉ. मनीष मोहन गोरे	195/–
27	रसोई विज्ञान	पुनीता मल्होत्रा	95/–
28	ह्यूमन ट्रांसमिशन एवं अन्य विज्ञान कथाएं	डॉ. ज़ाकिर अली रजनीश	150/–
29	बायोइंफार्मेटिक्स	डॉ. अर्चना पांडेय	150/–
30	हमारे प्रेरणा स्रोत भारतीय वैज्ञानिक	राम शरण दास	195/–
31	मध्यप्रदेश की विज्ञान संचार यात्रा	चक्रेश जैन	95/–
32	हिन्दी विज्ञान लेखनः भूत, वर्तमान एवं भविष्य	डॉ. शिव गोपाल मिश्रा	195/–
33	दैनिक जीवन में रसायन	डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती	195/–
34	जलवायु परिवर्तन	डॉ. दिनेश मणि	195/–
35	ग्रीन बेबी	श्री विजय चितौरी	195/–
36	फोरेन्सिक साइंस	डॉ. पंकज श्रीवास्तव	195/–
37	सर्वशास्त्र शिरोमणि गणित	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा	195/–
38	ऊतक संवर्धन	श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	195/–
39	आइए लिनक्स सीखें	श्री रविशंकर श्रीवास्तव	250/–
40	हम क्या समझते हैं?	श्री प्रदीप श्रीवास्तव	95/–
41	सौन्दर्य प्रसाधनों का रसायन विज्ञान	डॉ. बबिता अग्रवाल	195/–
42	प्रदूषण जनित रोग	डॉ. सुनंदा दास	195/–
43	भोपाल के पक्षी	डॉ. स्वाति तिवारी	395/–
44	पर्यावरण और मानव जीवन	डॉ. सुमन गुप्ता	195/–